माधवी

लेखक

ठाकुर गोपालशरणसिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९३८

Printed and published by
K. Mittra, at The Indian Press. Ltd.,
ALLAHABAD



श्रीमान् बान्धवेश सर गुलाबसिंहजूदेव

समर्पण

सिद्धि श्री १०८ सम्राट्

महाराजाधिराज श्रीनिवासकृपापात्राधिकारी

श्रीमान् बान्धवेश सर गुलाबसिंहजूदेव

के० सी० एस० आई०

महाराजा साहब बहादुर, राज्य रीवाँ को

सेवा में

श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक समर्पित

गोपालशरणसिंह

विषय-सूची

माधवी

राधिकारमण

(१)

जिनकी असीम सत्ता कण कण में है व्याप्त,
जिनकी महत्ता व्यक्त होती क्षण क्षण में।
सर्व-सुख-दायिनी समोद लोटती हैं सदा,
ऋद्धि-सिद्धियाँ समस्त जिनके चरण में॥
पीड़ित हो पाप-ताप और ईति-भीतियों से,
आता है अखिल लोक जिनकी शरण में।
कर तू रमण मन मंगल-करण दुख-
दीनता-हरण वर राधिका-रमण में॥

  

स्वागत

नाच रहीं तरल तरङ्गें स्वच्छ सागर में,
बोल रहे विविध विहङ्ग रम्य वन में।
छा रही निराली हरियाली मञ्जु मेदिनी में,
जग रही जगमग ज्योति है गगन में।

लोचन लुभाते हुए लोल वृन्त-दोल पर,
भूल रहे फूल कर फूल उपवन में।
किस अनजाने जग-जीवन के स्वागत को,
उड़ रही सरस सुगन्धि है पवन में॥

  

प्रश्न

किसके मनोज्ञ मुख-चन्द्र को निहार कर,
मेरा उर-सागर सदैव है उछलता।
किसके समीप शुद्ध भाव से पहुँच कर,
किसी ओर मेरा चल चित्त भी न चलता॥
मेरा प्राण-वायु किसे पंखा झलता है सदा,
किसका अनूप रूप आँखों में टहलता।
यह तो बता दो ज़रा मेरे मनो-मन्दिर में
किसका पुनीत प्रेम-दीपक है जलता॥

  

तेरी छवि

जिसको विलोक मुग्ध होता है अखिल लोक,
फूल फूलते हैं नेक लगती न देरी है।
आता रजनी में रजनीश जिसे देखने को,
दिन में लगाता दिननाथ नित्य फेरी है।

तारे जिसे देख कर रहते चकित-से हैं,
कुछ हँसती-सी अहो ! रात भी अँधेरी है।
जिस पर मोहित हो प्रकृति बनी है चेरी,
धन्य धन्य धन्य धन्य धन्य छवि तेरी है ॥

(२)

शून्य नभ को भी चमकाती निज ज्योति से जो,
घन की घटा में छिटकाती छटा प्यारी है।
तुच्छ भूमि को भी कर देती जो सुवर्णमयी,
ऊजड़ वनों को भी बनाती रम्य भारी है।
क्षुद्र खग-वृन्द में भी शोभा सरसाती जो है,
नंगे पर्वतों में भी दिखाती कान्ति न्यारी है।
सींचती सुधा जो वसुधा में सुखकारी सदा,
तेरी चित्तहारी सुषमा की बलिहारी है ॥

  

विनय

मीन-मद-हारी तेरे लोचन ललाम जहाँ,
सबको कराते नित्य नील नीरजों का भान।
हरती जहाँ है तेरे मुख की मनोज्ञ छवि,
राका के कलानिधि की कलित कला का मान।
देखकर तेरी मञ्जु मन्द मन्द मुसकान,
चारु चपला का जहाँ आता मन में है ध्यान।
यह वरदान दे कि बैठके वहीं सदैव,
सुख से करूँ मैं तेरी सुखमा-सुधा का पान ॥

(२)

होता दिन-रात जहाँ तेरा दिव्य गुण-गान,
मन से कदापि जहाँ छूटता न तेरा ध्यान।
सुनते जहाँ हैं सब नित्य ही लगाके कान,
तेरी मनोहारी मृदु मञ्जु मुरली की तान।
सुख से सदैव तेरे प्रेमीजन भाग्यवान,
करते जहाँ हैं तेरा रम्य रूप-रस-पान।
विनय यही है वहीं तनिक मुझे भी स्थान,
कर दे प्रदान दया करके दया-निधान॥

  

अचरज

मैंने कभी सोचा वह मञ्जुल मयङ्क में है,
देखता इसी से उसे चाव से चकोर है।
कभी यह ज्ञात हुआ वह जलधर में है,
नाचता निहारके उसी को मञ्जु मोर है।
कभी यह हुआ अनुमान वह फूल में है,
दौड़ कर जाता भृङ्ग-वृन्द जिस ओर है।
कैसा अचरज है, न मैंने जान पाया कभी,
मेरे चित्त में ही छिपा मेरा चित्त-चोर है॥

❦ ❦

संयोग

हो रहते तुम नाथ जहाँ रहता मन साथ सदैव वहीं है।
मञ्जुल मूर्त्ति बसी उर में, वह नेक कभी टलती न कहीं है।
लोलुप लोचन को दिखती वह चारु छटा सब काल यहीं है।
है वह योग मिला हमको, जिसमें दुख-मूल वियोग नहीं है॥

  

प्रेम-प्रलाप

पागल मुझे जो कहते हैं कहने दो उन्हें,
तुम रहने दो जिस भाँति रहता हूँ मैं।
कहीं बह जाऊँ मुझे डर कुछ भी है नहीं,
बस बहने दो जिस ओर बहता हूँ मैं।
समझें भले ही सब लोग बकवाद उसे,
मुझे कहने दो वह जो जो कहता हूँ मैं।
मिलता उसी में मुझे सुख है अपार सदा,
देव सहने दो दुख जैसे सहता हूँ मैं॥

(२)

प्रीति है तुम्हारी फिर भीति किसको है मुझे,
आती है विपत्ति जो जो उसे तुम आने दो।
नेक डूबने का डर मुझको नहीं है नाथ,
प्रेम-सरिता में मुझे क्षेम से नहाने दो।

आग अनुराग की लगी है उर-धाम में जो,
उसको बुझाओ मत मुझे जल जाने दो।
फूल कर सुख से न भूल कहीं जाऊँ तुम्हें,
दुख ही सदैव देव मुझको उठाने दो॥

  

शिशु की दुनिया

माना सदा जाता रजनीश है खिलौना वहाँ,
बनता तमाशा वहाँ नित्य अंशुमाली है।
डाले हुए पैर का अँगूठा मुख में मनोज्ञ,
आता वहाँ याद शिशु-रूपी वनमाली है।
लाली अनुराग की सदैव रहती है वहाँ,
रखती उजाला वहाँ चन्द्र-मुखवाली है।
बनते मनुज भी हैं हाथी और घोड़ा वहाँ,
शिशु! सचमुच तेरी दुनिया निराली है॥

(२)

छाई रहती है सदा सुख की घटा यों वहाँ,
होती कभी चित्त से न दूर हरियाली है।
चिन्ता दुख शोक वहाँ आने नहीं पाते कभी,
करती सदैव वहाँ माता रखवाली है।

मोह मद मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
रहता न कोई वहाँ कपटी कुचाली है।
राजा है न कोई वहाँ रानी है न कोई वहाँ,
शिशु ! सब भाँति तेरी दुनिया निराली है ॥

  

वह

रहती उसी की मञ्जु मूर्त्ति मनोमन्दिर में,
जगमग ज्योति जग रही मन भाई है।
लोचनों ने जल भर भर नहलाया उसे,
अश्रु-मोतियों की मृदु माला पहनाई है।
उर ने पवित्र प्रेम-आरती दिखाई उसे,
साँसों ने चलाया पंखा अति सुखदाई है।
चित्त-वृत्तियाँ हैं सब सेवा में उसी की लगी,
प्राणों में उसी की आज होती पहुनाई है ॥

(२)

उसके विचित्र छवि-जाल में विलोचन ये,
उलझ रहे हैं किस भाँति सुलझाऊँ मैं।
तन मन प्राण सब वश में उसी के हुए,
मैं हूँ परेशान किसे किसे समझाऊँ मैं।
अङ्कित हिये में चित्र उसका कुलिश से है,
होता नहीं ज्ञात कैसे उसको मिटाऊँ मैं।
रोम रोम में है सुध उसकी समाई हुई,
कहो किस भाँति भला उसे भूल जाऊँ मैं ॥

(३)

मचल रहा है मन मत्त हो उसी के लिए,
यद्यपि उसी का सदा मन में निवास है।
रूप-सुधा-पान से न नेक भी हुई है कम,
प्रत्युत हुई है तीव्र कैसी यह प्यास है।
ज्यों ज्यों यह चित्त चित्त-चोर से हटाया जाता,
त्यों त्यों वह खिंचता उसी के ओर पास है।
चढ़ गया और प्रेम-पारा देखने से उसे,
बढ़ गया और देखने का अभिलाष है॥

(४)

क्या न है बसेरा प्राण ही में प्राण-वल्लभ का,
फिर क्यों सदैव प्राण रहता अधीर है।
क्यों न तृप्त होते पान करके विलोचन ये,
उसके स्वरूप को सुधा हो नेत्र-नीर है।
जानता नहीं क्या उर-कुञ्ज में छिपा है वह,
क्यों सदा पुकारता उसी को कण्ठ-कीर है।
एक क्षण भी है उसे भूलने न देती कभी,
धन्य धन्य धन्य मेरे मानस की पीर है॥

  

घनश्याम

श्यामल है नभ श्याम महीतल,
श्याम महीरुह भी अभिराम हैं।
श्यामल नीरधि-नीर मनोहर,
नीरद नीरज श्याम ललाम हैं।

श्यामल हैं वन बाग़ सरोवर,
श्यामल शैल महा छवि-धाम हैं।
कौन भला कह है सकता,
इसमें उसमें किसमें घनश्याम हैं॥

(२)

हों अथवा वह हों न कहीं पर,
हाँ, सबके मन में घनश्याम हैं।
सुन्दर श्याम-सरोरुह से छवि-
धाम विलोचन में घनश्याम हैं।
हैं करते अविराम विहार,
छिपे उर-कानन में घनश्याम हैं।
जीवन-दायक हैं घन के सम,
जीवन जोवन में घनश्याम हैं॥

  

चितवन

ऊषा का विकास देखा सन्ध्या का हुलास देखा,
चन्द्र का प्रकाश देखा विमल गगन में।
तरु का गुमान देखा फूल छविमान देखा,
ललित लताओं का वितान देखा वन में।

धाम अभिराम देखा ग्राम भी ललाम देखा,
शिशु छवि-धाम देखा सुन्दर सदन में ।
सब कुछ देखा किन्तु देखा उसको न कहीं,
देखा प्यार सच्चा जो तुम्हारी चितवन में ॥

  

मन की पीर

जिसके दृगों में नींद आती भूलके भी नहीं,
दिन दिन क्षीण हो रहा है जो शरीर से ।
नित्य प्रेम-पूर्वक रटाता जो किसी का नाम,
आठो याम पल पल निज कण्ठ-कीर से ।
उर-तल शीतल हुआ है जिसका गँभीर,
मूक वेदना से बहे लोचन के नीर से ।
जान सकता है वही होता कितना है सुख,
दुख से अधीर मृदु मानस की पीर से ॥

  

अज्ञात

मेरे लोल लोचन को उसने लुभा है लिया,
चुपचाप मेरे चित्त-वित्त को चुराया है ।
उसने किया है मुझे वश में सभी प्रकार,
निज अधिकार उर-देश में जमाया है ॥

निज गुण-जाल में फँसा है लिया मेरा मन,
रहता सदैव वह प्राणों में समाया है।
किन्तु मुझे आज तक उसने न जान पाया,
मेरे प्रेम को तो पहचान भी न पाया है ॥

(२)

करता निवास वह मेरे मनोमन्दिर में,
किन्तु इस बात को भी उसने न जाना है।
सबसे सहज है अजान बन जाना उसे,
हरदम एक यही उसका बहाना है।
भाता उसे बस कलपाना तरसाना मुझे,
उसने न सीखा कभी सुख सरसाना है।
दूर रहा उर से लगाना अपनाना अहो,
उसने न आज तक मुझे पहचाना है ॥

  

कामना

जहाँ दुख-क्लेश का प्रवेश है न होता कभी,
जहाँ मन भूलके भी होता है नहीं उदास।
मोह-मद-मत्सर की पहुँच नहीं है जहाँ,
होता है कदापि जहाँ शील सत्य का न ह्रास ॥
ज्ञान-भानु का प्रकाश रहता सदैव जहाँ,
करता निरंतर जो प्रेम-पद्म का विकास।
ऐसे अधिवास में सदा ही हो निवास मेरा,
करुणा-निवास तेरे चारु चरणों के पास ॥

  

सच्चा सुख

सच्चा सुख मिलता कहाँ है और किस भाँति,
देखते उसे न कहीं हम त्रिभुवन में।
मान में न गान में न सुधा-रस-पान में है,
जल में न थल में न गिरि में गगन में।
मिलता नहीं है वह वन उपवन में भी,
पाया नहीं जाता वह भूप के भवन में।
पाते हैं उसे सदैव वे ही निज जीवन में,
तन मन धन जो गमाते हैं लगन में॥

  

बालक

उठके सबेरे नित्य जाऊँगा चराने गाय,
शाम को उन्हीं के साथ धाम लौट आऊँगा।
नाचूँ और गाऊँगा सदैव बालकों के सङ्ग,
दूध दधि माखन चुराके खूब खाऊँगा॥
पहन वसन पीले वनमाला मोर पंख,
घूम घूम चारों ओर मुरली बजाऊँगा।
भैया को कहूँगा दाऊ लेगी तू बलैया मेरी,
फिर क्या न मैया मैं कन्हैया कहलाऊँगा॥

(२)

सुन्दर सजीला चटकीला वायु-यान एक,
मैया हरे काग़ज़ का आज मैं बनाऊँगा ।
उस पर चढ़ के करूँगा नभ की मैं सैर,
बादल के साथ साथ उसको उड़ाऊँगा ॥
मन्द मन्द चाल से चलाऊँगा उसे मैं वहाँ,
चहक चहक चिड़ियों के सङ्ग गाऊँगा ।
चन्द्र का खिलौना मृगछौना वह छीन लूँगा,
भैया को गगन की तरैया तोड़ लाऊँगा ॥

  

अज्ञान

पान मैं न खाती कभी तो भी ये अधर मेरे,
लाल लाल होते जा रहे हैं क्यों प्रवाल-से ।
बढ़ गये सत्य ही क्या मेरे ये विलोचन हैं,
लगते न जाने क्यों वे मुझको विशाल-से ।
ज़ोर ज़ोर मुझसे चला है क्यों न जाता अब,
सीख-सी रही हूँ मन्द चाल मैं मराल से ।
सजनी भला क्यों मुझे यह गुड़ियों का खेल,
खेलना न नेक भी है भाता कुछ काल से ॥

  

आँखें

जब वह आते बन जाती हैं लजीली तब,
झट झिप जातीं पलकों में छिप जाती हैं।
पर मुसकाते हुए लौट जब जाते वह,
तब तो न नेक भी वे चैन कहीं पाती हैं।
लाख समझाओ फिर धरतीं न धीरज वे,
झर झर नीरद-सा नीर बरसाती हैं।
आँखें ये निगोड़ी ख़ूब ऊधम मचातीं अली,
आप कल पाती नहीं हमें कलपाती हैं॥

  

विचित्र चित्र

(१)

बार बार दृग डूब जाते पार पाते नहीं,
कैसा वह रूप का अपार पारावार है।
उसके समान मञ्जु मूर्ति को न रच पाया,
हार गया यत्न कर कर करतार है॥
वह छवि-धाम वसु याम सामने हो रहे,
होता उसे देख यही मन में विचार है।
उसके हज़ारों चित्र खींचता हज़ारों भाँति,
कैसा चित्त चतुर विचित्र चित्रकार है॥

(२)

जिसने उसे है एक बार भी निहार लिया,
उसे फिर और कोई दृश्य नहीं भाता है।
उसके अपार शोभा-सिन्धु में समाता वह,
और बार बार वहीं गोता वह खाता है॥
उसके समीप कोई जाय या न जाय कभी,
किन्तु मन गये बिना चैन नहीं पाता है।
ज्यों ज्यों खींचता है चित्त उसका विचित्र चित्र,
त्यों त्यों वह अनायास आप खिंच जाता है॥

(३)

वह तो कदापि कहीं आता और जाता नहीं,
किन्तु चुपके से चित्त सबका चुराता है।
ज्यों रवि निशा में त्यों ही रहता छिपा है सदा,
तो भी निज ज्योति सब कहीं दिखलाता है।
उसका अनूप रूप दृग देख पाते नहीं,
पर वह लोचनों में आप ही समाता है।
उसका विचित्र चित्र कोई खींच पाता नहीं,
किन्तु वह उर में स्वयं ही खिंच जाता है॥

(४)

कञ्चन-सा कान्तिमान कञ्ज-सा सुकोमल है,
कोटि काम से भी कमनीय वह भारी है।
देख मुख-मण्डल की आभा मनोहारी न्यारी,
होती मन्द चन्द की अमन्द ज्योति प्यारी है॥

दीप्यमान दीपक-सी दिव्य देह की है द्युति,
दामिनी की दीप्ति जैसी जाती न निहारी है।
उसका विचित्र चित्र खींचे चित्रकार कैसे,
उसे देखते ही भूल जाती चित्रकारी है॥

  

ताजमहल

मानी-सा खड़ा है अभिमानी निज गौरव का,
सचमुच ताज तेरा जग में न सानी है।
तुझको विलोक फल मिलता विलोचन का,
आती याद शिल्प-कला रुचिर पुरानी है॥
बादशाह शाहजहाँ मुमताज बेगम की,
रह गया तू ही एक प्रीति की निशानी है।
कलकलनादिनी कलिन्दजा सुनाके तुझे,
कह रही मानों वही प्रेम की कहानी है॥

  

सुध

प्राणों को सदैव हरसाती रहती है वह,
आँखों में अतीव सुख वह सरसाती है।

उर में पवित्र प्रेम-भाव उपजाती सदा,
और एक अनुपम ज्योति-सी जगाती है।
आई थी नजर एक बार ही तुम्हारी छवि,
पर याद उसकी हज़ार बार आती है॥

  

प्रतीक्षा

प्राणधन आवेंगे लगावेंगे गले से मुझे,
मन को मुदित यह भावना बनाती है।
रोम रोम में है सुधा-स्रोत-सी बहाती वह,
प्रचुर प्रसन्नता न उर में समाती है।
रूप-रस-प्यासी दृग-फल-अभिलाषी आँख,
पलक-प्रसून-पुञ्ज-पाँवड़े बिछाती है।
साँस भी हुलास-भरी नेक रुकती है नहीं,
बार बार आती और बार बार जाती है॥

(२)

बह रही तरल तरङ्ग अङ्ग अङ्ग में है,
प्रेम की तरङ्गिणी तरङ्गित है तन में।
मन में छिपाये छिपती है अभिलाषा नहीं,
झलक रही है आशा रुचिर वदन में।

त्यों त्यों देखने को दृग होते हैं अधीर और,
ज्यों ज्यों अब हो रहा विलम्ब आगमन में ।
जान पड़ता है उन्हें लाने को यहाँ तुरंत,
आतुर हैं प्राण उड़ जाने को पवन में ॥

  

प्यासा

पाता है न चैन कभी तो भी घबराता नहीं,
छल रही उसको न जाने कौन आशा है ।
पागल नहीं है रहता है सदा पागल-सा,
बन गया आप वह अजब तमाशा है ।
कैसे मर जाय मरने भी है न देती उसे,
उर में समाई एक ऐसी अभिलाषा है ।
जाना नहीं जीवन का सुख निज जीवन में,
जीता अहो, जीवन * बिना ही वह प्यासा है ॥

  

चित्त की चाह

किसको पसन्द दुखी रहना निरन्तर है,
भाता किसे डूबना है चिन्ता-सिन्धु में अथाह ।
अच्छा लगता है किसे रोना दिनरात भला,
सुखकर होता किसे निज उर का है दाह ॥

* जीवन = जल ।

ऊब मैं गया हूँ सब भाँति इस जीवन से,
किन्तु दीखतो न मुझे कोई छूटने की राह ।
मैं तो चाहता हूँ चित्त से कि छोड़ दूँ मैं उसे,
पर छोड़ती न मुझे मेरे चित्त की है चाह ॥

  

ब्रज-वर्णन

आते जो यहाँ हैं ब्रज-भूमि की छटा वे देख,
नेक न अघाते होते मोद-मद-माते हैं ।
जिस ओर जाते उस ओर मनभाये दृश्य,
लोचन लुभाते और चित्त को चुराते हैं ।
पल भर को वे अपने को भूल जाते सदा,
सुखद अतीत-सुध-सिन्धु में समाते हैं ।
जान पड़ता है उन्हें आज भी कन्हैया यहाँ,
मैया मैया टेरते हैं गैया को चराते हैं ॥

(२)

करते निवास छवि-धाम घनश्याम-भृङ्ग,
उर-कलियों मे सदा ब्रज-नर-नारी को ।
कण कण में है यहाँ व्याप्त दृग-सुखकारी,
मञ्जु मनोहारी मूर्ति मञ्जुल मुरारी की ।
किसको नहीं है सुध आती अनायास यहाँ,
गोवर्धन देखकर गोवर्धन-धारी की ?
न्यारी तीन लोक से है प्यारी जन्म-भूमि यही,
जन-मन-हारी वृन्दा-विपिन- विहारी की ॥

(३)

अङ्कित ब्रजेश की छटा है सब ठौर यहाँ,
लता-द्रुम-वल्लियों में और फूल फूल में।
भूमि ही यहाँ की सब काल बतला-सी रही,
ग्वाल-बाल सङ्ग वह लोटे इस धूल में।
कल कल रूप में है वंशी-रव गूँज रहा,
जाके सुनो कलित कलिन्दजा के कूल में।
ग्राम ग्राम धाम धाम में हैं घनश्याम यहाँ,
किन्तु वे छिपे हैं मञ्जु मानस-दुकूल में॥

(४)

गूँज रही आज भी सभी के श्रवणों में यहाँ,
रुचिर रसाल ध्वनि नूपुरों के जाल की।
भूल सकता है कोई ब्रज में कभी क्या भला,
निपट निराली छटा चारु वनमाल की।
समता मराल ने न नेक कभी कर पाई,
मञ्जु मन्द मन्द नन्द-नन्दन की चाल की।
रहती दृगों में छाई उर में समाई सदा,
छवि मन भाई बाल मदन गोपाल की॥

(५)

अब भी मुकुन्द रहते हैं ब्रज-भूमि ही में,
देखते यहाँ के दृश्य दृग फेर फेरके।
छिपे उर-कुञ्ज में हैं वृन्दावन-वासियों के,
थकते वृथा ही लोग उन्हें हेर हेरके।

चित्त-वृत्तियाँ हैं सब गोपियाँ उन्हीं की बनी,
रहती उन्हीं के आस पास घेर घेरके।
आठो याम सब लोग लेते हैं उन्हीं का नाम,
मानों हैं बुलाते "श्याम श्याम" टेर टेरके॥

(६)

उमड़ रहा है प्रेम-पारावार मानस में,
ब्रज-वनितायें कैसे बैठो रहें मान में।
किस भाँति आज ब्रजराज से करें वे लाज,
रहता सदैव है समाया वह ध्यान में।
मन में बसी है मूर्त्ति उसी मन-मोहन की,
हिचकें भला वे कैसे रूप-रस-पान में।
मृदु मुरली की तान प्राण में है गूँज रही,
कैसे न सुनेंगी उसे अँगुली दे कान में॥

(७)

जिसने विपत्तियों से ब्रज को बचाया सदा,
दिव्य बल पौरुष दिखाया बालपन में।
मार क्रूर कंस को स्वदेश का छुड़ाया क्लेश,
सुयश-प्रकाश छिटकाया त्रिभुवन में।
सबको सदैव सिखलाया शुचि विश्व-प्रेम,
गीता को बनाया उपजाया ज्ञान मन में।
दुख को हटाया सुख-बेलि को बढ़ाया वह,
श्याम मनभाया है समाया वृन्दावन में॥

(८)

वही मञ्जु मही वही कलित कलिन्दजा है,
ग्राम और धाम भी विशेष छवि-धाम हैं।
वही वृन्दावन है निकुञ्ज द्रुम-पुञ्ज भी हैं,
ललित लतायें लोल लोचनाभिराम हैं।

वही गिरिराज गोपजन का समाज वही,
वही सब साज बाज आज भी ललाम हैं।
ब्रज की छटा विलोक आता मन में है यही,
अब भी यहाँ ही शुभ-नाम घनश्याम हैं॥

(९)

देते हैं दिखाई सब दृश्य अभिराम यहाँ,
सुषमा सभी की सुध श्याम की दिलाती है।
फूली फली सुरभित रुचिर द्रुमालियों से,
सुरभि उन्हीं की दिव्य देह की हो आती है।
सुयश उन्हीं का शुक सारिका सुनातीं सदा,
कूक कूक कोकिला उन्हीं का गुण गाती है।
हरी भरी दृग-सुखदाई मनभाई मञ्जु,
यह ब्रज-मेदिनी उन्हीं की कहलाती है॥

(१०)

सुखद सजीली सस्य-श्यामला यहाँ की भूमि,
श्याम के ही रङ्ग में रँगी है प्रेम-भाव से।
रज भी पुनीत हुई उनके चरण छूके,
शीश पर उसको चढ़ाते भक्त चाव से।
पाप-पुञ्ज-नाशी उर-कमल-विकासी हुआ,
यमुना-सलिल बस उनके प्रभाव से।
कर दिया पूरा उसे वर वृन्दावन ने ही,
जो थी कमी मेदिनी में स्वर्ग के अभाव से॥

  

उपहार

दान किया मैंने तुझे तन मन धन किन्तु,
बढ़ गया तेरा लोभ और भी अपार है।
होता है न तोष तुझे दोष मुझे देता सदा,
तू ही ले विचार यह कैसा अनाचार है॥
क्या है बचा और भला जो मैं तुझे भेंट करूँ,
रह गई शेष बस आँसुओं की धार है।
तेरे उर में है नेक प्यार भी न मेरे लिए,
तेरे लिए मैंने दिया जीवन का सार है॥

(२)

आता क्यों कभी तू नहीं हर दम तेरे लिए,
रहता खुला ही हुआ मेरा उर-द्वार है।
जानता नहीं क्या यह बात तुझे देखे बिना,
मेरे लिए सब ओर घोर अन्धकार है॥
तुझ पर सारा भव-वैभव निछावर है,
तेरे बिना हाय, यह जीवन भी भार है।
और क्या मैं भेंट करूँ प्राणधन ? तेरे लिए,
मैंने निज प्राण को बनाया उपहार है॥

  

चन्द्रखिलौना

देख पूर्ण चन्द्रमा को मचल गया है शिशु,
लूँगा मैं खिलौना यह मुझे अति भाया है।
माता ने अनेक भाँति उसे समझाया पर,
एक भी न माना और ऊधम मचाया है।
निज मुख-चन्द्र का रुचिर प्रतिबिम्ब तब,
दिखा कर दर्पण में उसे बहलाया है।
हँस कर कौतुक से बोली चारु चन्द्र-मुखी,
ले तू अब वह चन्द्र इसमें समाया है॥

(२)

देख आरसी में परछाईं पूर्ण चन्द्रमा की,
शिशु ने समोद निज हाथ को बढ़ाया है।
उसी क्षण चन्द्र-वदनी के मुख-चन्द्र का भी,
देख पड़ा वहाँ प्रतिबिम्ब मनभाया है।
जान पड़ता है, उन दोनों को विलोक कर,
एक ही समान उन्हें विधि ने बनाया है।
लूँ मैं किसे और किसे छोड़ूँ हीन मान कर,
इस असमंजस में वह घबराया है॥

  

भोले भाले हृदयेश

उनको वृथा ही अभिमानी लोग मानते हैं,
सीधे हैं इसी से वह कुछ न बखानते।
कह सकता है कौन उनको हठीला भला,
वह तो कदापि नेक हठ हैं न ठानते।

देखकर उनकी सलोनी भव्य भोली मूर्त्ति,
जान पड़ता है वह कुछ भी न जानते।
कैसे निजमुख से कहूँ मैं यह बात भला,
मेरे हृदयेश मुझे हैं न पहचानते॥

  

स्मृति

प्रात-प्रयाण-कथा सुनके उसके मुख-पङ्कज का मुरझाना।
और ज़रा हँसके उसका अपने मन का वह भाव छिपाना।
किन्तु अचानक ही उसके वर लोचन में जल का भर आना।
सम्भव है न कभी मुझको इस जीवन में वह दृश्य भुलाना॥

  

तू

तेरी मञ्जु छवि देख मोद-मद-मत्त होके,
करते कलित खग-कुल कल कल हैं।
उछल उछल जलनिधि की तरङ्गें तुङ्ग,
उठती तुझी से मिलने को पल पल हैं।
तेरी दया से ही शतदल शत दल पाते,
तरु फल फूल दल फूल परिमल हैं।
तेरे प्रेम से ही चलदल चल दल होते,
अचल उसी से होते अटल अचल हैं॥

(२)

खोल कर अगणित तारक-नयन निज,
देखता नभस्थल सदैव तेरी ओर है।
मञ्जुल अमन्द सुखकन्द मुख-चन्द तेरा,
चाव से निहार चन्द बनता चकोर है।
श्याम घन जैसा अभिराम श्याम तन तेरा,
देख देख नाचता समोद मन-मोर है।
कामद का कामद मनोहर मनोहर का,
चित्त-चोर का भी तू चतुर चित्त-चोर है॥

  

टेक

छलती सदा हो मुझे आशा है मरीचिका-सी,
फलती कदापि नहीं मेरी अभिलाषा एक।
छाई रहती है दुखदायी विपदा की घटा,
बढ़कर मेरे दुख एक से हुए अनेक।
मेरी दशा देखकर बुद्धि है ठिकाने नहीं,
काम कुछ आता नहीं अब अपना विवेक।
किन्तु निज नाश की नहीं है मुझे चिन्ता नेक,
रहनी सदैव बस चाहिए तुम्हारी टेक॥

  

अवहेलना

कहना नहीं है मुझे कुछ भी तुम्हें जो सदा,
भाता विपदा की ओर मुझको धकेलना।
चिन्ता की न चिन्ता दुख का भी दुख है न मुझे
खलता न नेक भी है सङ्कट का झेलना।
खूब भरमाओ तरसाओ कलपाओ मुझे,
प्रिय है तुम्हें जो नित्य ऐसे खेल खेलना।
किन्तु नाथ रक्खो ध्यान मेरे मान का सदैव,
करके कृपा न करो मेरी अवहेलना॥

  

प्रेम

विफल प्रयास चाहे कोई कितना ही करे,
बचता कदापि नहीं प्रेम के प्रहार से।
भीतर का भाव कभी छिपता छिपाये नहीं,
ऊपर के निपट निठुर व्यवहार से॥
उर की उमङ्ग रुकती है नहीं रोकने से,
अन्त में अवश्य हार जाता मन प्यार से।
प्रेम-रस-पूरित दृगों का वह अङ्गीकार,
होता है सुखद और मुख के नकार से॥

(२)

तन मन प्राण वश में है कर लेता प्रेम,
करके प्रवेश लोल लोचन के द्वार से।
आग अनुराग की हिये में लग जाती जब,
बुझती नहीं है तब किसी उपचार से॥

मन में समाई हुई मञ्जु मूर्त्ति मोदमयी,
होती है प्रसन्न उर के ही उपहार से ।
एक दिन प्यार से अवश्य हार जाती लाज,
किन्तु ह होता है अपार इस हार से ॥

  

मानिनी

दृग-शर साध कर तान भ्रू-कमान वङ्क;
भाव उपजाती भामिनो है भूरि भय के ।
रोष से अरुण मुख देख यह होता भान,
मानों छीन ली है छवि इन्दु की उदय के ॥
विपुल बहाके बारि-धार युग लोचन से,
पल पल दृश्य दिखलाती है प्रलय के ।
जान पड़ता है वह साज सजती है आज,
पति के हृदय-रूपी विश्व की विजय के ॥

  

मन से

जान पड़ते हो तुम सज्जन सुशील बड़े,
हँस कर बातें करते हो सभी जन से ।
सबसे सदैव समवेदना दिखाते तुम,
करते अपार प्रेम व्यञ्जित वचन से ।

किन्तु क्षमा करो मित्र यह कहने के लिए,
होता है प्रकट कुछ और ही नयन से।
मन के तुम्हारे क्या हैं सचमुच सच्चे भाव,
यह तो तनिक तुम पूँछो निज मन से ॥

  

राधा-कृष्ण

(१)

होता एक दूसरे को एक दूसरे का दुख,
एक दूसरे को सुखी रहते बनाये हैं।
एक दूसरे में प्रेम-ज्योति हैं जगाये दिव्य,
एक दूसरे के दृग रहते लुभाये हैं।
एक दूसरे के मुख-चन्द्र के चकोर चारु,
एक दूसरे के चित्त-चोर मनभाये हैं।
एक दूसरे में सदा रहते लगाये मन,
दोनों एक दूसरे के प्राण में समाये हैं ॥

(२)

रहते पगे हैं एक दूसरे के ध्यान में ही,
करते निवास एक दूसरे के मन में।
जान पड़ता है, सदा रहते समाये प्राण,
एक दूसरे के एक दूसरे के तन में।

प्रेम के प्रभाव से सदैव एक दूसरे के,
रहती प्रसन्नता है अङ्कित वदन में।
देती है दिखाई उन्हें एक दूसरे की छटा,
वन में, भवन में, समस्त त्रिभुवन में ॥

  

आँख-मिचौनी

मूँद लिये मेरे दृग किसने अचानक हैं,
कौन घुस आया मेरे विजन भवन में।
कुछ भी रहस्य मैंने समझ न पाया पर,
उठ रहे परम विचित्र भाव मन में।
पुलकित रोम रोम मेरा हो रहा है अब,
दामिनी की धार-सी है दौड़ रही तन में।
मिल गया मानों मुझे बैठे बिठलाये आज,
रक्खा रहा जो धन धनेश के सदन में ॥

(२)

जान गया जान गया कौन हो सुजान ? तुम,
तुम्हें पहचान गया मत बतलाओ तुम।
खोल दो नयन मत मुझे तरसाओ और,
सुख सरसाओ प्रेम-सुधा बरसाओ तुम।

खूब छिटकाओ निज छवि की निराली छटा,
भाँति भाँति के अनूप रूप दिखलाओ तुम।
छिप कर जाने अब पाओगे कदापि नहीं,
जाओ या न जाओ फिर आओ या न आओ तुम॥

(३)

बहुत दिनों में तुम मुझको मिले हो नाथ,
पूरी हुई मेरी अभिलाषा आज सारी है।
जानने न पाया और मूँद लिये मेरे दृग,
कौतुकी विचित्र हो तुम्हारी चाल न्यारी है।
छिप कर जाना तुम चाहते हो किन्तु तुम्हीं,
न्याय से कहो क्या यह वञ्चना न भारी है।
यह तुम जान लो कि मैं हूँ मानने का नहीं,
छोड़ूँगा कभी न तुम्हें शपथ तुम्हारी है॥

  

विचित्रता

नाना रूप रङ्ग और गुण के निराले नये,
जग में अनेक दिव्य दृश्य दृष्टि आते हैं।
कुछ ललचाते कुछ लोचन लुभाते कुछ,
प्रीति उपजाते कुछ चित्त को चुराते हैं।
किन्तु तुममें है एक बहुत विचित्र बात,
और कहीं कभी हम जिसको न पाते हैं।
देखें जो तुम्हें तो हम मन हैं गमाते यदि,
देखें न तुम्हें तो निज प्राण ही गमाते हैं॥

  

शिशु

धारा प्रेम-सागर की लाई शिशु को है यहाँ,
विधि ने बनाया क्या खिलौना एक न्यारा है।
न्यारा सब जग से है उसका अनूप रूप,
विकसित कञ्ज के समान अति प्यारा है।
प्यारा वह मञ्जुता की मूर्ति-सा किसे है नहीं,
व्योम से गिरा हुआ क्या कोई लघु तारा है।
तारा लोक-लोचन का सबका दुलारा मानों,
माता के सनेह ने सगुण रूप धारा है॥

(२)

छहर रही है एक सुन्दर नवीन छटा,
सुमन-समान-सुकुमार अङ्ग अङ्ग में।
आज कुछ और कल और ही है मञ्जु छवि,
मानों रँगता है कोई नित्य नये रङ्ग में।
जानें जिन्हें जानने का दावा रहता है सदा,
शिशु है निमग्न किस भाव की तरङ्ग में।
सोच सोच हार गया समझ न पाया कभी,
उछल रहा है वह कौन सी उमङ्ग में॥

(३)

आया अनजान साथ लाया कुछ भी है नहीं,
नेक भी किसी से नहीं जान पहचान है।
रहता चकित है विलोक यह लोक नया,
उसे यह विश्व इन्द्रजाल के समान है।

भाता है जगत का न कोई भी पदार्थ उसे,
भाता जननी का बस उर-रस-पान है।
सो कर हो समय बिताता अधिकांश शिशु,
करता किसी का मानो दिन-रात ध्यान है॥

(४)

जिसको विलोक मुग्ध होता है सदैव मन,
मुख पर छाया कैसा विमल प्रकाश है।
मंद मंद मञ्जुल मधुर मुसकान द्वारा,
करता प्रकट शिशु अतुल हुलास है।
देख देख चारों ओर खोजता किसे है वह,
मन में छिपाये कौन मञ्जु अभिलाष है।
कोमल कुसुम जैसे नन्हें नन्हें अंग में ही,
छिपा सब शक्तियों का चरम विकास है॥

(५)

शिशु के शरीर की परम लघुता को देख,
होता मन में है भ्रम है या नहीं तन है।
मानो रूप-घन से चुआ है सुधा-बिन्दु एक,
किं वा प्रेम-पादप का सुन्दर सुमन है।
धन को उसे हो नेक कामना कभी क्यों भला,
वह तो स्वयं ही बड़ा अनमोल धन है।
करता सदैव वह शासन जगत का है,
किन्तु बल क्या है अहो, केवल रुदन है॥

(६)

परम अशक्त असहाय वह ज्ञात हुआ,
किन्तु अब कैसा रङ्ग शिशु ने जमाया है।
परवश होकर भी वश में सभी को किया,
मानों वह कोई नया जादू सीख आया है।

अनायास उसने चुराया चित्त जग का है,
प्रेम-वश लाल और हीरा कहलाया है।
माता के उदर से निकल कर आया पर,
उर में उसी के स्नेह-रूप में समाया है॥

(७)

वह है अकाम दाम से है उसे काम नहीं,
भाता जिसे जो है उसे देता वही नाम है।
उसकी उपासना में लीन रहता है लोक,
किन्तु वह वासना-विहीन अविराम है।
देश देश ग्राम ग्राम धाम धाम में है वह,
उसका प्रभाव सब ठौर "वसु" याम है।
प्रकटे उसी के रूप में थे घनश्याम राम,
परम ललाम शिशु ईश अभिराम है॥

  

आवेदन

डूब रहे प्राण पाप-ताप के पयोनिधि में,
देर न लगाओ इन्हें शीघ्र ही उबार लो।
कर रहा मोह-कंस मन में उपद्रव है,
शान्ति है न जीवन में तनिक निहार लो।
चित्त में हुई है धर्म-भाव की अतीव ग्लानि,
बढ़ रहा दम्भ नेक यह तो विचार लो।
क्या कहें व्रजेश हम तुमसे विशेष और,
आओ उर-देश में हमारे अवतार लो॥

  

विचित्र दृश्य

(१)

चारों ओर भीतों में अनेक लगे दर्पण थे,
छहर रही थी प्रभा सुन्दर सदन में।
लोचनाभिराम वह दृश्य था विचित्र मित्र,
देखकर होता था महान मोद मन में।
जान पड़ता था दिव्य ज्योति जगती थी वहाँ,
और लगती थी चकाचौंध-सी नयन में।
सब ओर देती थी दिखाई एक रूप-राशि,
होता था न ज्ञान वह थी कहाँ भवन में॥

(२)

जग उठती थी उर में भी एक ज्योति नई,
क्षण-ज्योति जैसी ज्योति देखके जगी हुई।
मुख के अनेक प्रतिबिम्ब दीखते थे मञ्जु,
सुन्दर सुधांशु की सभा-सी थी लगी हुई।
जिस ओर जाती उस ओर थी ठहर जाती,
दृष्टि इस भाँति रही प्रेम में पगी हुई।
देखकर दर्पण में अपना अनूप रूप,
अनुपम रूप-राशि थी स्वयं ठगी हुई॥

  

फूल-सी

दया कर मुझे याद उसकी दिलाओ मत,
चुभती कलेजे में सदैव वह शूल-सी।
नेक भी दृगों से रुकती है नीर-धार नहीं,
पड़ गई लोचनों में सचमुच धूल-सी।
देखा नहीं मैंने उसे चिर काल से परन्तु,
प्राण-पलने में वही छवि रही झूल-सी।
भूल-सी गई हैं मुझे और सब बातें किन्तु,
भूलती कदापि नहीं मूर्ति वह फूल-सी॥

  

नहीं

"नहीं" कह दिया बस मौन फिर धार लिया,
होगा परिणाम क्या न तुमने विचारा है।
आशा का समूल नाश किया इस उत्तर ने,
रह गया हमको न कोई भी सहारा है।
विफल मनोरथों को अब है ठिकाना कहाँ,
जल गया हाय, क्या न मन भी हमारा है।
अतुल अनर्थ इस एक शब्द-द्वारा हुआ,
होगया हमारे भाग्य का ही निपटारा है॥

  

प्राणवल्लभ

बेसुरी भले ही रहे मेरी उर-वीणा सदा,
उसको उसी का अनुराग-राग गाना है।
प्राण जो रहेंगे तो रहेंगे उसमें ही लीन,
जो नहीं रहेंगे तो उसी के पास जाना है।
उसको न देखें तो बताओ फिर देखें किसे,
मेरे लोचनों को और किस काम आना है।
तन मन प्राण में समाया प्राणवल्लभ है,
उसको भुलाना अपने हो को भुलाना है॥

(२)

एक को लुभाना दूसरे को है लुभाना चित्त,
एक का चुराना दूसरे का भी चुराना है।
एक को खिझाना दूसरे को है खिझाना और,
एक को रिझाना दूसरे को भी रिझाना है।
एक को मनाना दूसरे को भी मनाना प्रीति,
एक से लगाना दूसरे से भी लगाना है।
मिल गये मेरे प्राण ऐसा प्राणवल्लभ से,
एक को गमाना दूसरे को भी गमाना है॥

  

कठिनाई

मैं हूँ दीन रह गया कुछ भी न मेरे पास,
लुट गया हाय, मेरा दिल का ख़ज़ाना भी।
मेरा मन-माणिक चुरा कर उन्होंने अहो,
कर दिया बन्द इस ओर अब आना भी॥

खलती न नेक भी है उनको पराई पीर,
काम कुछ आता नहीं अश्रु बरसाना भी।
जाना भी न जग से मुझे है उन्हें छोड़ कर,
इस लिए कठिन हुआ है मर जाना भी॥

  

रूप-रस की पिपासा

तन मन मेरा है तुम्हारे रङ्ग ही में रँगा,
प्रीति तुममें है रोम रोम नस नस की।
उर पर मेरे अधिकार है तुम्हारा हुआ,
अब है न हाय, कोई बात मेरे वश की।
केवल तुम्हें मैं चाहता हूँ दुनिया में मुझे,
कामना न धन की है और न सुयश की।
आशा से हुई थी अभिलाषा तुम्हें देखने की,
हुई अभिलाषा से पिपासा रूप-रस की॥

  

चित्त में न लाती मैं हूँ अपनी व्यथा की कथा,
याद रहो उनकी न एक भी बुराई है।
सारी निठुराई उनकी मैं सखो भूल गई,
किन्तु भूलती न कभी छवि मनभाई है॥

(२)

भोग मैं रही हूँ मुझको जो यहाँ भोगना है,
नाहक विकल मन रहता अजान है।
मुझसे हुई क्या भूल कौन अपराध हुआ,
इसका मुझे न हुआ अब तक ज्ञान है।
इसमें नहीं है कुछ दोष उनका भी सखो,
मेरे प्रतिकूल बस विधि का विधान है।
मान गया मेरा और सारा अभिमान गया,
रह गया केवल उन्हीं का ध्रुव ध्यान है॥

  

व्यर्थ जीवन

काम कुछ आया नहीं जीवन ललाम यहाँ,
राम राम कह कर बस पछताना है।
उसको वृथा ही खोजता हूँ निशिवासर मैं,
उर-धाम ही में छिपा ज्ञान का ख़ज़ाना है॥
आँख झिप जाती कभी हाथ हिल जाता कभी,
मेरी चूक से ही नित्य चूकता निशाना है।
कैसा हूँ अजान मैंने यह भी न जाना कभी,
किस ओर आना और किस ओर जाना है॥

  

अखिलपति

जीव जन्तु सारे जल थल नभमण्डल के,
　　रहते बँधे हैं सदा तेरे प्रेम-पाश से।
विश्व-वाटिका विशाल बनती सुवासित है,
　　सुखद सरस तेरो साँस की सुवास से।
तेरे भास से ही भासमान है प्रकाशमान,
　　होता आसमान भासमान तेरे हास से।
होता है विकास हास नाश सब जातियों का,
　　तेरे अभिलाष और तेरे भ्रू-विलास से॥

  

वह छवि

मञ्जुल मयङ्क में मयङ्कमुखी-आनन में,
　　वैसो निष्कलङ्क कान्ति देती न दिखाई है।
दृग झिप जाते देख पाते हम कैसे उसे,
　　ऐसी प्रभा किसने प्रभाकर में पाई है।
न्यारा तीन लोक से है प्यारी सुखकारी भारी,
　　सारी मनोहारी छटा उसमें समाई है।
जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती,
　　वह मनभाई छवि किसको न भाई है॥

(२)

नित्य नई शोभा दिखलाती है लुभाती वह,
किसमें सलोनी सुघराई कहो, ऐसी है।
केतकी को, कुन्द को, कदम्ब को कथा है कौन,
कल्पलतिका में कहाँ कान्ति उस जैसी है।
रति में, रमा में रमणीयता कहाँ है वैसी,
कनक-लता में कमनीयता न वैसी है।
छहर छहर छहराती है छबीली छटा,
आहा, वह सुघर सजीली छवि कैसी है॥

(३)

सुषमा उसी की अवलोक के सुधाकर में,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मञ्जुल मयूर होते मोद-मद-माते हैं।
फूलों में उसी की शोभा देखके मिलिन्दवृन्द,
फूले न समाते "गुन गुन" गुण गाते हैं।
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी,
प्रेम से प्रफुल्लित पतङ्ग जल जाते हैं॥

(४)

उसको विलोक दामिनी है छिप जाती शीघ्र,
अति मनभावनी भी भामिनी लजाती है।
उसके समीप दीप-मालिका न भाती ज़रा,
मञ्जु-मणि-मालिका भी नेक न सुहाती है।

निज हीनता है मोतियों से सही जाती नहीं,
उनकी इसी से छिद जाती क्या न छाती है।
वह छवि देख देख दृष्टि तृप्ति पाती नहीं,
मानो स्वयं प्रेम-वश उसमें समाती है॥

(५)

कञ्ज-कलिका में नहीं सुषमा मयङ्क की है,
कोमलता कञ्ज की मयङ्क ने न पाई है।
चम्पककली में न सुवर्ण की सुवर्णता है,
चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है।
रत्न की रुचिरता में मणि की मनोज्ञता में,
एक दूसरे की प्रभा देती न दिखाई है।
सबकी निकाई सुघराई मोददायी महा,
ललित लुनाई उस छवि में समाई है॥

(६)

तेजधारियों में है कृशानु का भी मान बड़ा,
किन्तु भानु सबसे महान तेजवान है।
पादपों में पारिजात पर्वतों में हिमवान,
नदियों में जाह्नवी मनोज्ञता की खान है।
मोर-सा मनोहर न कोई खग रूपवान,
फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है।
यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,
किन्तु उस छवि-सा न कोई छविमान है॥

(७)

वन उपवन में सरोज में सरोवर में,
सुमन सुमन में उसी की सुघराई है।
चम्पक चमेलियों में नवल नवेलियों में,
ललित लताओं में भी उसकी लुनाई है।

देख पड़ती है रंग रंग के विहङ्गमों में,
सुषमा उसी की कुंज कुंज में समाई है।
सब ठौर देखो, वह छवि दिखलाई देती,
उर में समाई तथा लोचनों में छाई है॥

  

रत्न

मिलती नहीं थी मुझे जग में कहीं भी शान्ति,
होता था न हर्ष कहीं आने और जाने में।
चित्त लगता था किसी काम में कदापि नहीं,
दिन बीतते थे बस दुखहो उठाने में।
घेरे रहती थी सब काल विपदायें मुझे,
लोचन लगे थे अश्रु-धार बरसाने में।
किन्तु अब मेरी दुख दीनता हुई है दूर,
ऐसा एक रत्न मिला दिल के ख़ज़ाने में॥

  

उच्छ्वास

हम जीवित हैं पर नाथ, हमें,
इस जीवन में कुछ सार नहीं।
उठता जगदीश, न शीश कभी,
हिलता तक है दुख-भार नहीं।

अपने दिन ये किस भाँति कटें,
अब आपस में कुछ प्यार नहीं।
हम रोक रहे फिर भी दृग से,
रुकती अब है जल-धार नहीं ॥ १ ॥

निज पूर्व-दशा हम भूल गये,
हमको अपना अब ज्ञान नहीं।
सब गौरव खोकर बैठ रहे,
निज उन्नति का कुछ ध्यान नहीं।
भगवान, भला हम जायँ कहाँ,
जग में जब है निज मान नहीं।
हमको अपना अभिमान नहीं,
हममें अब है कुछ आन नहीं ॥ २ ॥

बल-वैभव का किस भाँति प्रभो,
इस भाँति समूल विनाश हुआ ?
कुछ जान नहीं पड़ता हमको,
अब क्या वह दिव्य प्रकाश हुआ।
अपना कुछ भी न रहा अपना,
सपना वह पूर्व-विकास हुआ।
इतना अपना अब ह्रास हुआ,
जगतीतल में उपहास हुआ ॥ ३ ॥

वह स्वच्छ उदार विचार कहाँ,
वह है गुण-ग्राम ललाम कहाँ ?
वह नीति तथा वह रीति कहाँ,
वह प्रीति महा मुद-धाम कहाँ ?

वह शील तथा वह शौर्य कहाँ,
वह सज्जनता अभिराम कहाँ।
अब है वह ज्ञान सकाम कहाँ,
जग में अपना वह नाम कहाँ ? ॥ ४ ॥

हममें अब पौरुष नेक नहीं,
ममता न रही अपने जन में।
तन में बल का अब नाम नहीं,
दृढ़ता कुछ भी न रही मन में।
हम हैं इस भाँति अबोध हुए,
फँसते अति क्षुद्र प्रलोभन में।
तुमको प्रभु, क्या यह ज्ञात नहीं,
हम दीन फँसे किस बन्धन में ॥ ५ ॥

हम डूब रहे दुख-सागर में,
अब बाँह प्रभो, धरिए धरिए।
अखिलेश, विशेष कहें हम क्या,
बस शीघ्र कृपा करिए करिए।
यह भारत ग़ारत हो न कहीं,
धन-धान्य यहाँ भरिए भरिए।
बस हो अब नेक विलम्ब नहीं,
यह दीन दशा हरिए हरिए ॥ ६ ॥

  

विनती

पड़ो मँझधार में हमारी नाव लो निहार,
बैठे मौन धार क्यों तुम्हीं तो कर्णधार हो ।
उठ रहीं ऊँची ऊँची लहरें अपार आज,
हमको डुबोना चाहती हैं बे-करार हो ।
तुम्हें छोड़ और कोई हमको सहारा नहीं,
विनती यही है बस शीघ्र बेड़ा पार हो ।
तार रहे लाखों को करोड़ों को उबार रहे,
क्यों हमें बिसार रहे नाथ, बार बार हो ?

  

रोने में

सच कहता हूँ मिलती है मुझे शान्ति बड़ी,
अपना शरीर नेत्र-नीर से भिगोने में ।
होता है अपार हर्ष मुझको तुम्हारे लिए,
अश्रु-मोतियों का हार प्यार से पिरोने में ॥
धन्य है विलोचन का वारि वह आता काम,
नित्य ही तुम्हारे चरणों की धूल धोने में ।
सब कुछ खोने में हुआ है मुझे लाभ बड़ा,
मुझको मिला है सुखही सदैव रोने में ॥

  

अनुरोध

सुनकर जिसको पयोधि होते पुलकित,
गूँज उठता है जल थल और आसमान।
सूर्य्य शशि तारे फिरते हैं नभ-मण्डल में,
नित्य सुनने के लिए जिसका अमर गान।
बन गई और भी रसीली मनमोहिनी जो,
करके तुम्हारी मृदु अधर-सुधा का पान।
तनिक सुना दो मुरलीधर मुझे भी आज,
अपनी सुरीली उसी मञ्जु मुरली की तान॥

(२)

नीरधि में नीर के समान रहता है भरा,
जिसके स्वरों में सब लोकों का समस्त ज्ञान।
कानों में सभी के मेल-मन्त्र फूँकती जो सदा,
सबको कराती जो अनन्त प्रेम-रस-पान।
जिसको श्रवण कर मोह मद मत्सर का,
होता है निमेष भर में अशेष अवसान।
मुरली-मनोहर सुना दो मुझको भी नेक,
अपनी रसीली उसी मृदु मुरली की तान॥

  

भाग्य

मिलता न जीवन का दिव्य उपहार मुझे,
कुछ भी उपाय नहीं आता है विचार में।
हो रही निराशा मुझे कब तक बैठा रहूँ,
आशा के महान मञ्जु मन्दिर के द्वार में।

व्याकुल हैं कर्णधार लगती नहीं है पार,
मेरी नाव कब से पड़ी है मँझधार में।
जान पड़ता है नहीं खोजूँ उसको मैं कहाँ,
मेरा भाग्य है छिपा अपार अन्धकार में॥

  

विचार-हीन

औरों की बड़ाई से सदैव जलते हो तुम,
होते हो प्रसन्न बस अपनी बड़ाई में।
होती अपनी भी हो भलाई तुम तो भी कभी,
देते कुछ योग नहीं औरों की भलाई में।
और सब बातों में भले ही तुम हीन रहो,
किन्तु हो किसी से नहीं हीन निठुराई में।
और सब ठौर तुम भीरुता दिखाते सदा,
शूरता दिखाते सिर्फ़ घर की लड़ाई में॥

  

अनीति

भाव भला उसके मन के,
किस भाँति कहूँ वह है न बखानता।
ली न कभी उसने सुध भी,
अपना जन क्या न मुझे वह मानता॥

जान सका वह क्यों न मुझे,
कहते सब हैं वह है सब जानता ।
है नित ही रहता उर में,
फिर क्यों न मुझे वह है पहचानता ॥

(२)

क्या यह बात न ज्ञात उसे,
कितनी मुझको उससे दृढ़ प्रीति है ।
क्या उसके उर में उपजी अब भी,
मुझमें कुछ भी न प्रतीति है ।
है टलती मन की न व्यथा,
खलती मुझको उसकी अनरीति है ।
क्यों वह यों हठ है करता,
तजता वह क्यों अपनी न अनीति है ॥

  

आत्मविस्मृति

मिलता कहीं जो नहीं वह सुख प्राप्त हुआ,
मुझको तुम्हारे लिए दुख भी उठाने से ।
अनुभव इसका हुआ है मुझे कैसी बड़ी,
शान्ति मिलती है नेत्र-नीर में नहाने से ।
सब ठौर दीखती है मुझको तुम्हारी मूर्ति,
यह बड़ा लाभ हुआ प्रीति के लगाने से ।
आने से न जाने से न मन को गमाने से ही,
मैंने तुम्हें पाया अपने को भूल जाने से ॥

  

संकल्प

जो दुख दान किया तुमने,
चुप चाप उसे मुझको सहना है।
है उससे कुछ लाभ नहीं,
पर वारि विलोचन से बहना है।
प्राण रहें अथवा न रहें,
मुझको न कभी कुछ भी कहना है।
है जिस भाँति तुम्हें रखना,
उस भाँति सदैव मुझे रहना है॥

  

नेह-भरी निठुराई

(१)

है वह निष्ठुर किन्तु मुझे,
खलती न कभी उसकी निठुराई।
हैं उसके कटु बोल सुधा-
फल से, लगते मुझको सुखदाई।
रोष-भरे उसके दृग की,
करती मन मुग्ध ललाम ललाई।
याद नहीं रहती दुख की,
लखके उसकी मुख-चन्द्र-जुन्हाई॥

(२)

है मिलता फल लोचन का,
लखके उसका चिढ़ना मनमाना।
है मन को मुददायक ही,
मुझको उसका दिन-रात खिझाना।
है सुख-साज समान मुझे,
उसका निज भौंह-कमान चढ़ाना।
है खलता कुछ और नहीं,
खलता मुझको उसका पछताना॥

(३)

है करती दुख दूर सभी,
उसके मुख-पङ्कज की सुघराई।
जान नहीं पड़ता कुछ भी,
फिर आँख अचानक क्यों भर आई।
मार दिया दृग-बाण मुझे,
इस भाँति दया उसने दिखलाई।
मोद सदा भरती उर में,
अति नेह-भरी उसकी निठुराई॥

  

लालसा

कब तक ठौर ठौर खोजता फिरूँ मैं तुम्हें,
क्यों न मन में ही मैं तुम्हारी मूर्त्ति धार लूँ।
क्यों न आँसुओं से मैं पखार लूँ तुम्हारे पद,
क्यों न प्रेम-ज्योति से ही आरती उतार लूँ।

रोकता बहुत रहता हूँ अपने को सदा,
तो भी चित्त चाहता है तुमको पुकार लूँ ।
दिन-रात मेरी अब एक लालसा है यही,
बस एक बार तुम्हें जो भर निहार लूँ ॥

  

मञ्जु मूर्त्ति

मञ्जुल मृदुल मुरली के स्वर के समान,
उसका सरस गान गूँजता है कान में ।
उसका अनूप रूप भूलता कभी है नहीं,
चाहे कुछ सोचूँ किन्तु आता वही ध्यान में ।
सुखकर उसके शरीर की सुगन्धि जैसी,
है मुझे उसी की सुध आती आन आन में ।
प्राण में उसी की मञ्जु मूर्त्ति है समाई हुई,
मानो उड़ती है वहाँ साँसों के विमान में ॥

(२)

उछल रहा है उर मोद-मद-मत्त होके,
उसमें समाई एक उसकी झलक है ।
क्या करे अभागी आँख उसका क़सूर क्या है,
जब उसे देख बन्द होती न पलक है ।
क्या मैं बतलाऊँ इन प्राणों का बुरा है हाल,
छूटती कदापि नहीं उनकी ललक है ॥
मन तो गया है पहले ही उसके समीप,
किन्तु कभी जाती नहीं मन की कलक है ॥

(३)

क्या कहें कि कैसी उसकी है कमनीय कान्ति,
कुन्दन-सी कुन्द-सी या कञ्ज की निकाई-सी।
क्यों न प्राण उस पर प्रेम से निछावर हों,
रहती खिली है सदा शरद-जुन्हाई-सी॥
होती उसे देखने से आँखों को न तृप्ति कभी,
रहती सदैव छवि-सिन्धु में समाई-सी।
आती और जाती रहती हैं चैन पाती नहीं,
मानों खोजती हैं उसे साँसें घबराई-सी॥

(४)

मैंने उसे क़ैद कर लिया उर-अञ्चल में,
क्योंकि वह चञ्चल है सर्वथा स्वभाव से।
उसका प्रकाम अभिराम छवि-धाम रूप,
दिन-रात देखता हूँ प्रेम के प्रभाव से।
कैसे पल भर भी वियोग उसका मैं सहूँ,
हर दम चित्त चाहता है उसे चाव से।
प्राण-पलने में झूलती है मञ्जु मूर्ति सदा,
और खींचती हैं उसे साँसें मृदु भाव से॥

  

भूल

मुझसे हुई थी भूल ऐसी दयासिन्धु तू भी,
हो सका नहीं समर्थ उसको भुलाने में।
भोग मैं चुका हूँ भाँति भाँति के विशेष क्लेश,
बीत गई मेरी सब उम्र पछताने में।

व्याकुल सदैव रहते हैं प्राण तेरे लिए,
किन्तु लगती है लाज तेरे पास आने में।
यदि एक बार भी तुझे मैं देख लेता अब,
तो मुझे न होता नेक दुख मर जाने में॥

  

प्यार

किससे कहूँ मैं बस चुपचाप दिन-रात,
रोता रहता हूँ मैं तुम्हारे अनाचार से।
मेरी मनोज्वाला होगई है ऐसी विकराल,
नेक भी न होती शान्त दृग-जल-धार से।
बढ़ता तुम्हारा जा रहा है नित्य अत्याचार,
और दबता मैं जा रहा हूँ दुख-भार से।
माफ़ करो, माफ़ करो, मुझे मत छेड़ो और,
तंग आ गया हूँ मैं तुम्हारे इस प्यार से॥

  

तलवार

क्यों न लोग तुझसे सदैव डरें करवाल,
काल को करालमूर्ति तू ही है जहान में।
आँखों में लगाके चकाचौंध चञ्चला-समान,
करती विनाश तू सहास एक आन में।

जान पड़ती है कभी बुझती न तेरी प्यास,
रहती लगी है सदा शोणित के पान में।
कर निज निन्द्य काम तू भी शरमाती कुछ,
क्या तू इसी हेतु छिप जाती शीघ्र म्यान में ॥

(२)

तू है करवाल नाश-मूल लोक में प्रसिद्ध,
देते शूरमा क्यों तुझे आदर अपार हैं।
लाते ध्यान में न कभी तेरी दया-हीनता को,
करते न तेरे अविचार का विचार हैं।
किस भाँति उन्हें वश में तू कर लेती भला,
करते सदा क्यों इतना वे तुझे प्यार हैं।
देकर सहर्ष निज शीश उपहार तुझे,
तुझको बनाते वे गले का मञ्जु हार हैं ॥

(३)

क्यों न हम मानें तलवार सर्वनाशी तुझे
प्यासी रहती है सदा शोणित की धार की।
क्यों तू मन में है उपजाती मद मत्सर को,
क्यों तू तोड़ती है गाँठ आपस के प्यार की।
क्यों तू बन जाती अवलम्ब-दायिना सदैव,
न्याय-दया-हीन मदमत्त अधिकार की।
क्यों न टूट जाती जब करती सहायता तू,
अत्याचार अनाचार और अविचार की ॥

(४)

न्याय सत्य का ही कर सर्वदा समर्थन तू,
मत कर साथ कभी तू कठोरपन का।
चूर कर क्रूरता तू क्रूर आततायियों की,
दूर कर दुःख तू समस्त त्रिभुवन का।

बन कर तू प्रचण्ड काल-दण्ड के समान,
हर ले घमण्ड पर-पीडकों के मन का।
कर तू सभी का सदा चोर डाकुओं से त्राण,
मत हर प्राण तू कृपाण दीन जन का॥

  

झूठा प्यार

चिंता निज दुख की न मुझको सताती कभी,
ऊबता नहीं हूँ मैं विपत्तियों की मार से।
भय लगता है नहीं मुझे पर-पीडकों का,
डरता न नेक भी हूँ शत्रु के प्रहार से।
खोता हूँ न धीरज न होता हूँ कदापि खिन्न,
निठुर मनुष्यों के निठुर व्यवहार से।
किन्तु हमें हरदम होती वेदना अपार,
झूठी समवेदना से और झूठे प्यार से।

  

वारिए समाज पर तन मन धन धाम,
अपना सुधार कर जाति को सुधारिए।
धारिए हिये में मूर्ति विश्व-रूप ईश्वर की,
मन में उसी की प्रेम-आरती उतारिए॥

  

छविमयी

(१)

सुषमा सभा की क्या है उसमें समाई सब,
उपमा न भाई कोइ उसकी लुनाई की।
वैसी कान्ति देती कान्ति में भी दिखलाई नहीं,
करिए न बात सुमनों को सुघराई की।
छिप गई नभ में तुरंत ही उषा की प्रभा,
छवि मनभाई देख होठों की ललाई की।
शरद-जुन्हाई शरमाई-सो शरण आई,
समता न पाई जब गात की गोराई की॥

(२)

रहती खिली है सदा वह कल कौमुदी-सी,
कमनीय कल्प-लतिका-सी मनभाई है।
मानों मञ्जु दामिनी ललाम काम-कामिनी ने,
पाई मनभावनी उसी से सुघराई है।

उसको निहार कर होता यह है विचार,
रम्य रवि-रश्मियों की राशि सुखदाई है।
ज्वाला-सी किसी को मणि-माला-सी किसी को,
सुरबाला-सी किसी को वह देती दिखलाई है॥

  

लगन

क्या मैं बतलाऊँ कुछ जान पड़ता है नहीं,
कैसे मन मोहित हुआ है अनजान में।
चाहे मैं कहीं भी रहूँ किन्तु मेरे लोचन ये,
रहते लगे हैं सदा रूप-रस-पान में।
मुझको नहीं है अहो, आज अपना भी ज्ञान,
गूँजती किसी की तान दिन-रात कान में।
मेरे प्राण भी हैं अब रहते न जाने कहाँ,
ध्यान भी निमग्न है किसी के ध्रुव ध्यान में॥

(२)

जान पड़ता है नहीं सचमुच बात क्या है,
दिन-दिन होता जा रहा क्यों क्षीण गात है।
चित्त है विकल कल नेक भी न पाता कहीं
कल्प के समान होता पल पल ज्ञात है।
उर में कराल ज्वाल-माल-सी समा है रही,
रहती दृगों में लगी नित्य बरसात है।
करता निवास प्राण ही में प्राणवल्लभ है,
तो भी प्राण रहता उदास दिन-रात है॥

  

उपचार

यह तो विचार करो प्यारे हो रही है नित्य,
कब से तुम्हारी प्रेम-पूजा अश्रुधार से।
कैसा है अभाग्य हाय, नेक भी न परितोष,
तुमको हुआ है इन मोतियों के हार से।
जान पड़ता है, दया आई है तुम्हें भी अब,
देखा एक बार तुमने भी मुझे प्यार से।
किन्तु मैं अधीर हूँ गँभीर पीर मानस की,
बढ़ गई और भी तुम्हारे उपचार से॥

  

विचित्र स्वभाव

उनकी नज़र पल भर में बदल जाती,
वह भी बदल जाते और इतराते हैं।
बात बात में सदैव वह हैं मचल जाते,
फिर न हमारी ओर आँख भी उठाते हैं।
उनको अनेक भाँति हम समझाते किन्तु,
एक भी हमारी बात मन में न लाते हैं।
बार बार हाथ जोड़ उनको मनाते हम,
पर बार बार वह रूठ रूठ जाते हैं॥

  

निठुराई

तज कर प्रीति-रीति निपट निठुर बन,
जब से हमारी सुध तुमने भुलाई है।
तब से तुम्हारी मञ्जु मूर्त्ति भूलती है नहीं,
रहती सदैव वह मन में समाई है।
ज्यों ज्यों करते हो तुम हमसे किनारा त्यों त्यों,
बढ़ता हमारा प्यार और मुददाई है।
हुई उपकारिणी हमारी सुखकारी भारी,
धन्य धन्य मोहन तुम्हारी निठुराई है॥

(२)

घूमती हमारे लोचनों में है तुम्हारी छवि,
चूमती सदैव उसे दृष्टि ललचाई है।
उर की हमारे पोर भूलने न देती कभी
फूल-सी तुम्हारी मृदु मूर्त्ति मनभाई है।
कैसा अचरज है, दृगों की जल-धार ने भी,
बहकर आग अनुराग की बढ़ाई है।
हृदय-विहारी गिरिधारी बलिहारी तुम्हें,
यह निठुराई भी तुम्हारी सुखदाई है॥

  

नारी

दृग हैं विषैले बाण भौंहें ह कमान वङ्क
चपला निवास करती है चारु हास में।
काली घुँघराली लोल तेरी लट नागिन-सी,
चमक रही है मुख-चन्द्र के प्रकाश में।

रहता छिपा है विकराल तीव्र ताप सदा,
विरह-व्यथित तेरे उर की उसास में।
क्यों न नर तुझसे सदैव भयभीत रहें,
छूटता न कोई पड़ तेरे प्रेम-पाश में ॥

  

विरहिणी

सोह रहे ठौर ठौर जलज जलाशयों में,
मोह रहे मन को निकुञ्ज पुञ्ज न्यारे हैं।
फूल रहे कमनीय केतकी कदम्ब कुन्द,
झूल रहे जिन पर भृङ्ग मोद-धारे हैं।
बोल रहे कोकिल हैं ललित लताओं पर,
डोल रहे मोर मञ्जु पक्ष को उभारे हैं।
किन्तु प्राणप्यारे दृश्य प्यारे ये तुम्हारे बिना,
प्यारे हमें होकर भी लगते न प्यारे हैं ॥

  

विधि का विधान

कैसे है तुम्हारा तन इतना कठोर जब,
सारा तन फूल जैसा मृदुल महान है।
बन गये आज इस भाँति हो अजान तुम,
मैं हूँ कौन मानों तुम्हें यह भी न ज्ञान है।

प्राण के समान हो सदैव तुम मेरे लिए,
किन्तु हाय मेरा तुम्हें नेक भी न ध्यान है।
जान पड़ता है नहीं कुछ भी सुजान मुझे,
यह अपमान है गुमान है कि मान है॥

(२)

देते थे किसी को दुख तुम भूल से भी नहीं,
भूल गई क्या तुम्हें तुम्हारी वह बान है।
अथवा हुए हो तुम और कुछ मेरे लिए,
जैसे मुझे और कुछ होगया जहान है।
तुम्हीं यह सोच लो तुम्हारा व्यवहार यह,
कैसा प्रेम-शून्य और दुखद महान है।
निज प्राणवल्लभ भी बनता निठुर ऐसा,
कितना विषम यह विधि का विधान है॥

  

विचित्र बात

कैसा अचरज है, विचार कीजिए तो ज़रा,
मन ही न जानता है मन के विचार को।
कैसे हो किसी से हमें मन में सहानुभूति,
दृग ही न देखते हैं दृग-जल-धार को।

है न उर ही को अहो, उर की व्यथा का ज्ञान,
सुनते न प्राण ही हैं प्राण की पुकार को।
जान पड़ती है यह सबसे विचित्र बात,
प्यार ही न नेक पहचानता है प्यार को॥

  

दरबार

बैठे थे क़तारों में हज़ारों सरदार वहाँ,
मोती की अनेक लड़ियाँ थीं एक हार में।
सबमें समान भक्ति-भाव था तुम्हारे प्रति,
देते थे तुम्हें वे उर-रत्न उपहार में।
था वहाँ किसी में राग-द्वेष का न लवलेश,
थे पगे सभी वे एक दूसरे के प्यार में।
न्याय सत्य तुम पर चमर चलाते रहे,
प्रेम का प्रकाश था तुम्हारे दरबार में॥

  

उलाहना

रोकता तुम्हें है कौन तुम उसे पूरा करो,
तुमने हमारे लिए चित्त में जो ठाना है।
एक दिन हमको अवश्य मरना है यहाँ,
अच्छा है तुम्हारे हाथ से ही मर जाना है।

सच कहते हैं हमें खलता ज़रा भी नहीं,
हमको तुम्हारा दुख देना मनमाना है।
किन्तु हूल देता शूल उर में हमारे सदा,
देखके दुखी हमें तुम्हारा मुसकाना है ॥

(२)

अच्छा लगता है तुम्हें हमको सताना सदा,
यह तो तुम्हारे लिए मन बहलाना है।
जान पड़ता है इसी भाँति तुम्हें जन्म भर,
हमको खिजाना और हमको रुलाना है।
जान भी किसी की चली जाय जो तुम्हारे लिए,
तो भी भूल कर भी न तुम्हें पछताना है।
आना और जाना नहीं सुख सरसाना नहीं,
भाता तुम्हें बस कलपाना तरसाना है ॥

  

दिल की आग

जान गये सब लोग इसे,
अब है तुममें कितनी निठुराई,
क्यों इतना बनते तुम हो,
खलती न तुम्हें जब पीर पराई।

था करना न निबाह तुम्हें,
तब क्यों तुमने चित चाह बढ़ाई ।
हो रहते दिल में फिर क्यों,
अपने घर में यह आग लगाई ॥

  

चिन्ता

आती हैं विपत्तियाँ अनेक एक साथ तो भी,
नेक भी कदापि मेरी डरती न छाती है !
पिसता कलेजा रहता है दिन-रात मेरा,
पर बुद्धि मेरी नहीं कभी घबराती है ।
आती है तुम्हारी निठुराई जब याद मुझे,
होता तभी ंज ज़रा आँख भर आती है ।
मेरी सर्द आहों से न कहीं जल जाओ तुम,
बस यही चिन्ता सदा मुझको सताती है ॥

  

अभिमान

काले बादलों-से केश उसके विलोक जब,
मोर नाचते हैं वह फूली न समाती है ।
लेके निज गोद में समोद मृग-शावक को,
उसके दृगों से निज लोचन मिलाती है ।

देह में कुसुम की कली भी लग जाती जब,
तब इठला कर व्यथा-सी जतलाती है।
बार बार दर्पण में निज छवि देखके भी,
मञ्जु मृग-लोचनी न नेक भी अघाती है॥

× × × ×

पान मैं न खाती किन्तु अरुण अधर मेरे,
पान मैं हूँ खाती यह भ्रम उपजाते हैं।
घूँघट में निज मुख रहती छिपाये सदा,
तो भी दृष्टि मुख से चकोर न हटाते हैं।
किस भाँति जाऊँ उपवन में कभी मैं सखी,
घेर कर भृङ्ग सदा मुझको डराते हैं॥
मैं हूँ शरमाती जब मेरे पतिदेव मुझे,
देव-नागरी-सी दिव्य नागरी बताते हैं॥

  

अद्भुत छवि

(१)

छोड़के अनेक मृदु मधुर फलों को शुक,
तेरे अधरों की ओर दौड़ दौड़ जाते हैं।
तज कर फूल सभी सुध बुध भूल कर,
आनन-सरोज पर भृङ्ग मड़राते हैं।
दीपक-शिखा से मुँह मोड़ के पतङ्ग तेरी,
दिव्य तन-ज्योति पर प्रीति दिखलाते हैं।
तेरी छवि देख खग आदि भी अघाते नहीं,
नर तो सदैव निज मन ही गमाते हैं॥

(२)

तुझको विलोक लाज-वश झुकती हैं लता,
कञ्ज-कलियों के मुँह बन्द हो हो जाते हैं।
तेरी तन-ज्योति से लजाई दामिनी को देख,
वारिधर अम्बर में उसको छिपाते हैं॥
तेरे मुख-चन्द्र से विजित अपने को मान,
छिप कर रात में ही चन्द्रदेव आते हैं।
खोजते सदैव रहते हैं कवि-वृन्द किन्तु,
तेरी सुषमा की कहीं उपमा न पाते हैं॥

  

याचना

(१)

जकड़े हमको तुम खूब रहो,
परवा न हमें इस बन्धन की।
कुछ सोच नहीं हमको इसका,
नित है बढ़ती तनुता तन की।
रहता तुममें अनुराग जिसे,
कुछ भाति उसे न किसी जन की।
तुम हो रहते जिसके मन में,
खलती उसको न व्यथा मन की॥

(२)

तुम जीवन के धन हो जिसके,
कुछ है न कमी उसको धन की ।
जगतीतल में कब चाह भला,
रहती उसको मणि-कञ्चन की ।
सुख-शान्ति अभीष्ट नहीं हमको,
जग के क्षण-भङ्गर जीवन की ।
तुम वास सदा करते जिसमें,
प्रभु दो वह व्याकुलता मन की ॥

  

ह्रास से विकास

रहता घिरा ही हुआ घोर कठिनाइयों से,
हर दम जीवन का मञ्जु उपहार है ।
किसके गले में पड़ जाता जगती-तल में,
बार बार हार के बिना ही जय-हार है ।
कौन जानता है इस छोटी बात को भी नहीं,
दुःख के ही बाद सुख मिलता अपार है ।
होता है विकास का विकास ह्रास से ही सदा,
जनता प्रकास को अपार अन्धकार है ॥

  

भिखारी

लाख मैं भुलाऊँ पर भूलती कदापि नहीं,
उसकी मनोज्ञ मुख-कान्ति सुखकारी है।
चितवन उसकी रसीली करुणा से भरी,
आती याद बार बार मुझे अति प्यारी है।
छाई रहती है सदा आँखों में उसी की छवि,
मन में समाई मञ्जु मूर्ति मनोहारी है।
आया पहले था जो भिखारी बन आज वही,
तन मन जीवन का बना अधिकारी है॥

  

समय का फेर

भानु के समान तेज जिनका निहार कर,
अंग अंग काँपते थे नीच निठुराई के।
तन मन धन से सहर्ष करते जो रहे,
नित्य नये काम निज देश की भलाई के।
फैला विश्व में था खूब जिनका सुयश दिव्य,
गाती गीत शारदा थी जिनकी बड़ाई के।
जिनकी समानता किसी ने कभी पाई नहीं,
पाई के नहीं हैं अब वे ही लाल माई के॥

(२)

लोक की भलाई जो सहर्ष करते थे सदा,
होता अपनी भी नहीं उनसे भलाई है।
जो थे धीर वीर वे ही दीन बल-हीन हुए,
खो गई न जाने कहाँ उनकी बड़ाई है।

विद्या नई कोई भी उन्होंने सीख पाई नहीं,
पास से गमाई पहले की भी कमाई है।
निज हीनता से लाल माई के लजाते नहीं,
पर यह हाल देख माई शरमाई है॥

  

अनुभूति

(१)

हम अनुमान से ही जान सकते हैं तुझे,
नाहक़ बने हैं हम निपट अजान-से।
तेरी मनोहारी मोदकारी छटा को ही देख,
होते तृप्त लोचन हैं रूप-रस-पान से।
होता है सदैव हमें मन में अपार हर्ष,
तेरी मृदु तान को ही सुन कर कान से।
करुणानिधान हमें होती अनुभूति तेरी,
निज उर-धाम ही में हरदम ध्यान से॥

(२)

होता है सदैव सूर्य्य-शशि का प्रकाश दिव्य,
विश्व का विकाश तेरे प्रेम के निमित्त से।
ज्यों ज्यों जगदीश खिँचता है मन तेरी ओर,
त्यों त्यों वह दूर हटता है तुच्छ वित्त से।

उर से प्रतीति तथा प्राण से पुनीत प्रीति,
तेरी अनुभूति हमें होती नित्य चित्त से।
तेरी महिमा अपार गूढ़ गरिमा अनन्य,
कैसे हो कथित मूढ़ कवि के कवित्त से॥

  

पूजा

धरणी सदैव तेरी करती परिक्रमा है,
तेरी मृदु मञ्जु मूर्ति ध्यान में है धरती।
तुझको रिझाने के लिए ही अपना स्वरूप,
प्रकृति-वधू ललाम है सदा सँवारती।
अपने असंख्य शतपत्ररूपी लोचनों से,
चाव से तुझे है वह नित्य ही निहारती।
ज्ञान की जगाकर अनोखी ज्योति प्रेममयी,
तेरी दिव्य आरती है भारती उतारती॥

  

दयालु

जिन पर प्राण भी चढ़ाना सुखदायक है,
क्यों न तन मन धन उन पर वारते।
करते तुम्हारे उर-धाम में हो वे निवास,
क्यों न अपने को तुम धन्य हो विचारते।

तार चुके लाखों को करोड़ों को उबार चुके,
क्यों न तुम उनकी दयालुता निहारते।
रहते पड़े न कभी तुम दुख-सागर में,
प्यार से उन्हें जो एक बार भी पुकारते॥

  

भारत-नारद-सम्मिलन

बैठ कर भारत अँधेरे में अकेले यहाँ,
अविरल अश्रु-धार क्यों तुम बहाते हो।
किसलिए मित्र इतना हो शरमाते तुम,
क्यों न सब हाल तुम हमें बतलाते हो।
परम गँभीर धीर वीर तुम थे सदैव,
फिर क्यों अधीर-भाव आज दिखलाते हो।
किस भाँति तुम इस भाँति दीन हीन हुए,
ऐसे हो मलीन पहचाने भी न जाते हो॥

(२)

अपने पुराने मित्र नारद को आया देख,
भारत ने आदर दिखाया उठ करके।
कुछ काल यों हीं चुप-चाप वह बैठा रहा,
अपने विशाल लोचनों में जल भरके।
कण्ठ भर आया मुख और भी उदास हुआ,
फिर वह बोला कुछ धीरज-सा धरके।
पूछते क्या मित्र! हो हमारा हाल आज हम,
जीते भी मरे हैं और जीवित हैं मरके॥

(३)

होगया शिथिल है हमारा अङ्ग-अङ्ग हाय,
अब हम जीवित हैं क्लेश ही उठाने को।
निज दुख हमसे सहा है नहीं जाता जब,
रोने लगते हैं हम मन बहलाने को।
कैसे समझावें और कैसे रोक रक्खें उन्हें,
आतुर सदैव रहते हैं प्राण जाने को।
कैसे ममता हो हमें दुखमय जीवन से,
मिलता नहीं है हमें पेट भर खाने को॥

(४)

कैसे हो हमारे मूढ़ पुत्रों का भलाई भला,
चिन्ता है न उनको स्वदेश की भलाई की।
देश की बड़ाई का न ध्यान रहता है उन्हें,
धुन रहती है बस अपनी बड़ाई की।
अब एक पाई भी मुहाल रहती है उन्हें,
दौलत गमाई बाप-दादों की कमाई की।
घर की लड़ाई का न हाल कुछ पूछो यार,
भाई खोदता है जड़ नित्य निज भाई की॥

(५)

जिनसे सदा ही हम आशा रखते हैं बड़ी,
वे भी अहो, अन्त में निकम्मे हैं निकलते।
जिन पर हमको भरोसा रहता है बड़ा,
वे भी सब काल हमें बार बार छलते।
रखते न आपस में मेल हैं हमारे सुत,
दिन-रात वे हैं एक दूसरे से जलते।
शासक हैं प्यारे शुभ-चिन्तक हमारे किन्तु,
उनके सँभाले भी न हम हैं सँभलते॥

(६)

निज प्रिय पुत्र भी न देते हैं हमारा साथ,
कहो, हम जग में भरोसा करें किनका ।
है समाज का न ध्यान देश-दशा का न ज्ञान,
आन है न इनको बुरा है हाल इनका ।
कैसे ये हटावेंगे हमारा दुख-भार भला,
उठता न आज इनसे है एक तिनका
भगवान कैसे भला उनका करेंगे कभी,
भाई के रुधिर से रँगा है हाथ जिनका ॥

(७)

भोग चुके भारत-निवासी हैं विशेष क्लेश,
तो भी देश का वे कभी ध्यान हैं न धरते ।
जन्म इस युग में लिया है किन्तु कुछ लोग,
दसवीं सदी में हैं निवास सदा करते ।
पलते हमीं से हैं सदैव पर कुछ लोग,
दम हरदम ही अरेबिया का भरते ।
सुत हैं हमारे पर जीते न हमारे लिए,
और न हमारे लिए वे कदापि मरते ॥

(८)

घर के कलह का न तार कभी टूटता है,
फिर किस भाँति सुख-शान्ति रहे धाम में ।
हम क्या बतावें ज़रा जाकर तुम्हीं मुनीश !
देखो लोग कैसे रहते हैं यहाँ ग्राम में ।
कैसे उस देश की भलाई हो जहाँ सदैव,
देती दिखलाई है ढिलाई सब काम में ।
होते हैं अनेक नित्य हिन्दू-धर्म में अधर्म,
है यहाँ न सच्चा धर्म-भाव इसलाम में ॥

(९)

देखकर हिन्दुओं की विविध कुरीतियों को,
जान तुम सकते हमारी दशा आज की।
दुधमुँहे बच्चों का विवाह यहाँ होता नित्य,
हालत बुरी है इस पतित समाज की।
बालविधवाओं का न हाल कुछ पूछो मित्र!
वह है हमारे लिए बात बड़ी लाज की।
अपने सगे भी हैं अछूत कहलाने लगे,
आई है विनाश-घड़ी जाति के जहाज़ को॥

(१०)

शोचनीय हालत हमारी पुत्रियों की सदा,
उर में हमारे और शोक उपजाती है।
जनती नहीं है अब जननी सपूत यहाँ,
गृह में कभी न गृह-देवी मान पाती है।
जाल में फँसी मलीन मीन के समान दीन,
नारियों को देख आँख भर भर आती है।
यदि अबलाओं की सुधरती नहीं है दशा,
लाज ही समाज की हमारे अब जाती है॥

(११)

क्या क्या बतलावें हम देख लो तुम्हीं मुनीश!
काल ने हमारा हाल कैसा कर डाला है।
देखकर हीनता अभागी निज सन्तति की,
जलती हमारे उर में कराल ज्वाला है।
क्या करें किसी प्रकार मिटता कसाला नहीं,
कर दिया शोक ने हमारा गात काला है।
ऐसी घनघोर घटा छाई है विपत्तियों की,
दीखता मुझे न किसी ओर भी उजाला है॥

(१२)

कहो मुनिदेव ! रामकृष्ण तो कुशल से हैं,
क्या नहीं यहाँ वे एक बार फिर आवेंगे।
हमको नहीं थी यह आशा उनसे कदापि,
इस भाँति वे भी जन्म-भूमि को भुलावेंगे।
हम मिट जावेंगे विशेष क्लेश पाकर जो,
क्या नहीं भला वे फिर पीछे पछतावेंगे।
उनसे हमारा यह प्रश्न पूछ लेना ज़रा,
क्या नहीं विपत्तियों से वे हमें छुड़ावेंगे॥

(१३)

सुनो मुनिपुंगव ! हमारा यह कण्ठकीर,
रटता सदैव राम-सीता राम-सीता है।
मुरली-मनोहर को भूलें हम कैसे कभी,
दी हमें जिन्होंने यह ग्रन्थ-रत्न गीता है।
दिन-रात प्यार से उन्हीं की याद कर कर,
हृदय हमारा दिव्य प्रीति-सुधा पीता है।
जीवित उन्हीं की कल कीर्ति रखने के लिए,
परम अभागा यह देश अभी जीता है॥

(१४)

हैं कहाँ प्रसिद्ध रण-धीर वरवीर भीष्म
उर में हमारे अब भी है मान जिनका।
शूरों के शिरोमणि कहाँ हैं धनु-धारी पार्थ,
करते सभी हैं दिव्य-गुण-गान जिनका।
मुनिदेव ! हैं कहाँ हमारे शिवराज आज,
हमको सदैव रहता है ध्यान जिनका।
किस शुभ लोक में प्रताप हैं प्रतापवान,
हमको सदा है बड़ा अभिमान जिनका॥

(१५)

कई सदियों तक रमा ने किया वास यहाँ,
अब क्या उन्होंने हमें सर्वथा भुलाया है।
रूठ कर हमसे चली वे जब से हैं गई,
तब से ज़रा भी सुख हमने न पाया है।
भूल गई भारती भी भाग्य-हीन भारत को,
उसके बिना ही यह अन्धकार छाया है।
क्या रहा हमारे पास हमने गमाया सब,
रह गई काया और मोह-मद-माया है॥

(१६)

सुनकर भारत के मुख से व्यथा की कथा,
अतिशय शोक हुआ नारद के मन में।
बोले प्रेम-पूर्वक वे "मत घबराओ मित्र,
आयेगा नया बल तुम्हारे कृश तन में।
होगी पूर्व जैसी फिर उन्नति तुम्हारी शीघ्र,
विद्या बुद्धि पौरुष में जीवन में धन में"।
देकर प्रबोधन सभी प्रकार भारत को,
दूसरे दिवाकर-से वे गये गगन में॥

  

भविष्य वाणी

भारत-निवासियों को प्रेम से पुकार कर,
बोली गिरा आकर मराल की-सी चाल में।
साहस न खोओ और होओ न अधीर वीर,
तुम न रहोगे फँसे यों ही दुख-जाल में।

जैसे गिरा वैसे ही उठेगा यह देश फिर,
जगत-शिरोमणि बनेगा कुछ काल में ।
मैं हूँ बतलाती तुम्हें विधि की अलीक लोक,
पढ़कर ठीक ठीक भारत के भाल में ॥

  

स्वभाव का भाव

सचमुच हम तो तुम्हारे हैं हितैषी बड़े,
फिर क्यों सदा ही तुम हमको सताते हो ।
सब काम में ही हम देते हैं तुम्हारा साथ,
क्यों भला हमारा दिल नाहक दुखाते हो ।
यह तो स्वभाव का प्रभाव है तुम्हारा दोष,
कुछ भी नहीं है तुम व्यर्थ ही लजाते हो ।
होता हमको है सुख देने में अपार सुख,
तुम दुख देने में सदैव सुख पाते हो ॥

  

व्रजराज

ग्राम हैं ललाम वही वही गिरि कानन हैं,
भानु-तनया का वही पुलिन पुनीत है ।
गाकर सदैव जिसे वंशी थे बजाते तुम,
ग्वाल-बाल-वृन्द नित्य गाता वही गीत है ।

ब्रज में समस्त साज-बाज आज भी है वही,
हो रहा अतीत वर्तमान-सा प्रतीत है।
चित्त को चुरा कर छिपे हो ब्रजराज कहाँ,
भूल गया क्या तुम्हें मधुर नवनीत है॥

(२)

जाना पनघट का गिराना भरी गागर का,
मुरली बजाकर भुलाना सुध तन को।
छिपना निकुञ्ज में प्रकट फिर होना शीघ्र,
देखकर आकुलता राधिका के मन की।
पहले खिजाना पाँव पड़के मनाना फिर,
नित्य नई लीला दिखलाना बालपन की।
भूल गये कैसे वह बातें वनमाली आज,
रास-रङ्गवाली वह बातें मधुवन की॥

(३)

भूल गये किस भाँति तुम ब्रज-नारियों को,
मन में तुम्हारी मूर्ति जो हैं सदा धारती।
क्या नहीं सदैव तुमको वे निज जीवन का,
परम अमूल्य धन अब भी विचारती।
देती हैं तुम्हें वे सुमनों का हार उपहार,
और वे तुम्हारी नित्य आरती उतारती।
ध्यान में तुम्हारे रहती हैं दिन-रात मग्न,
और वसु याम श्याम श्याम हैं पुकारती॥

(४)

तुमने लिया था जन्म जिस ब्रज-मण्डल में,
क्या तुम उसी को सब भाँति भूल जाओगे।
प्रीति-सुधा तुम बरसाओगे नहीं क्या यहाँ,
फिर कभी क्या न यहाँ सुख सरसाओगे।

व्याकुल तुम्हारे बिना हैं ये ब्रजवासी सभी,
　　क्या न तुम उनकी उदासी को मिटाओगे।
निज अश्रुधार ही बहा रही उन्हें है आज,
　　क्या न ब्रजराज तुम उनको बचाओगे॥

  

उसकी छवि

उसके समान छविमान कुछ भी है नहीं,
　　कैसे कहूँ कैसी मञ्जु उसकी लुनाई है।
परम मनोहर मनोज्ञ वस्तु जो है जहाँ,
　　सबका निचोड़ बस वह सुघराई है।
उषा प्रतिदिवस प्रभात में प्रभाकर को,
　　लाकर उसी की प्रभा देती मनभाई है।
है लगी मयङ्क में कलंक की इसी से छाप,
　　चारु चन्द्रिका जो मुख-चन्द्र की चुराई है॥

(२)

उसके रुचिर रूप-रङ्ग की रसीली छवि,
　　देती दिखलाई सब ओर मनभाई है।
मुख की सुगन्धि सुकुमारता सरोज में है,
　　सुषमा शरद के शशांक में समाई है।
छाई है गगन में दृगों की नीलिमा ललाम,
　　लाल मणियों में पद-पद्म की ललाई है।
अकथ अनूप मान निज उच्च शीश पर,
　　गात की गोराई हिमगिरि ने चढ़ाई है॥

  

हृदय का दान

तरस रहे थे प्राण तेरे देखने को जिन्हें,
तेरे सामने हैं खड़े देख वही छविमान।
क्यों न उर-आसन बिछाके बिठलाती उन्हें,
बोलती नहीं क्यों तू कहाँ है आज तेरा ध्यान।
जिनकी मनोज्ञ मूर्ति तेरे मन में है बसी,
क्या नहीं उन्हीं को पहचानती अरी अजान।
जान पड़ता है, देख उनका अनूप रूप,
रह गया तुझको न नेक अपना भी ज्ञान॥

(२)

सुन री अजान! तुझे सत्य हो हुआ क्या आज,
मान कर मेरी बात छोड़ अपना तू मान।
मत कर लाज खोल अपने विलोचन तू,
करने उन्हें दे शीघ्र सुषमा-सुधा का पान।
जानती नहीं क्या वही आये हैं भिखारी बन,
करती सदैव रहती है जिनका तू ध्यान।
ऐसा योग तुझको मिलेगा न कदापि फिर,
कर दे सहर्ष उन्हें निज उर का तू दान॥

  

स्वप्न

हर रही मेरे उर-देश का तिमिर-तोम,
उसके मनोज्ञ मुख-चन्द्र की जुन्हाई है।
कर रही दिव्य अनुराग-राग-रञ्जित-सी,
मन को रुचिर अधरों की अरुणाई है।

भर रही चित्त में अपार सुधा-सागर-सी,
उसकी छबीली छटा दृग-सुखदाई है।
कैसे बतलाऊँ मित्र ! मैंने सपने में आज,
देखी मृदु मञ्जु मूर्ति कैसी मन भाई है॥

(२)

देख कर देह की विशेष द्युति दामिनी-सी,
मन्द पड़ती थी ज्योति दीपक अमन्द की।
ललित लुनाई मन बरबस छीनती थी,
मृग-मदहारी लोल दृग सुखकन्द की।
उसकी निराली मतवाली चाल को विलोक,
आती याद गति गरवीली थी गयन्द की।
चन्द्रमा की चारुता सरोज की सरोजता का,
मान हरती थी प्रभा मञ्जु मुख-चन्द की॥

(३)

लोचन लुभावनी ललित लतिका-सी लोल,
देखी वह मञ्जु मूर्ति मैंने उपवन में।
अकथ अनूप सुषमा की प्रतिमा थी वह,
बालपन का था समावेश युवापन में।
शोभा की सदन वह घने तरुओं के बीच,
शोभित थी चारु चञ्चला-सी मञ्जु घन में।
नन्दन-विहारिणी ललाम काम-कामिनी का,
उसको विलोक आ रहा था ध्यान मन में॥

(४)

आँख खुलते ही वह दृश्य तो अदृश्य हुआ,
किन्तु दामिनी-सी रोम रोम में समा गई।
गई है विराज मञ्जु मूर्ति मनो-मन्दिर में,
उर में विचित्र एक ज्योति है जगा गई।

मोर केश घन का चकोर मुख-चन्द्रमा का,
मन को विलोचन को वह है बना गई।
पल भर में अजान प्राण को लुभा गई है,
निज छवि-जाल में है चित्त को फँसा गई ॥

  

प्रीति

वेदना विरह की हमें हो किस भाँति कभी,
दृग-पलनों में मञ्जु मूर्त्ति रही झूल है।
मन में हमारे जब आता है तुम्हारा ध्यान,
यों हीं व्यथा सारी तब जाती हमें भूल है।
शूल भी हमारे उर का है मोददायी हमें,
वह तो तुम्हारा सुध-वल्लरी का फल है।
हृदय-विहारो धन्य धन्य है तुम्हारी प्रीति,
दुख भी हमारे लिए हुआ सुख-मूल है ॥

  

बालपन

खो गया हमारा कहाँ सहज सनेह-भाव,
सरल स्वभाव और अनमोल भोलापन।
छीन लिया किसने हमारा सदानन्द-निधि,
लोभ-क्षोभ-रहित सुकोमल विमल मन।

है कहाँ हमारा वह आलस-विहीन तथा,
सुमन-समान छविमान सुकुमार तन ।
क्या हुआ हमारा सुख-शान्ति-धाम बालपन,
लूट लिया किसने हमारा वह प्यारा धन ॥

  

शिशु का शासन

सुलभ नहीं है वह जग में कहीं भी और,
जो तुझे विलोक होता प्राण को प्रबोध है ।
देख कर तेरी मञ्जु मन्द मन्द मुसकान,
दूर होता राग-द्वेष भूल जाता क्रोध है ।
जब तू मचल कर रोने लगता है कभी,
काम कुछ आता नहीं करना विरोध है ।
शिशु ! दुनिया में कौन टाल सकता कदापि,
तेरे अश्रु-पूरित दृगों का अनुरोध है ॥

(२)

आकर जगत में न जाने तू कहाँ से शिशु ?
सबके गले में प्रेम-पाश-सा है डालता ।
हरता सभी का मन मन्द मुसकान-द्वारा,
मोद-मग्न होके हाथ-पैर है उछालता ।
बोलना न आता तुझे चल सकता भी नहीं,
रोकर सदैव सब काम है निकालता ।
पर पाकशासन भी तेरे अनुशासन को,
पालता है हर्ष से कभी है नहीं टालता ॥

(३)

जब चिढ़ जाता तब मानता नहीं तू कभी,
चाहे तुझे कोई भी मनावे अति प्यार से।
बात बात में तू है सदैव ही मचल जाता,
देता है सभी को दुख निज अविचार से।
रोकर बड़ा ही कुहराम तू मचाता सदा,
तङ्ग रहते हैं लोग तेरे अनाचार से।
यह तो बता दे शिशु ! ऐसा कड़ा शासन तू,
करता मनुष्य पर किस अधिकार से॥

  

अनुताप

है कितना अनुताप हमें,
हमने न तुम्हें पहले पहचाना ।
है हमसे अपराध हुआ,
इसको न भला हमने कब माना।
जो दुख भोग चुके इस कारण,
सो सब क्या अब है बतलाना।
क्यों न दया-धन सम्भव है,
अब भी तुमको वह भूल भुलाना ॥

(२)

है अब हालत जो मन की,
किस भाँति तुम्हें उसको बतलावें ।
है घटता दुख-दाह नहीं,
कितना दृग-नीरद नीर बहावें ।

है ममता न तुम्हें हमसे,
फिर क्यों कर शान्ति कहीं हम पावें।
प्यार करो अथवा न करो,
हम और भला किसके ढिग जावें ॥

  

चाहना

सच्चे हो पुजारी तुम प्यारे प्रेम-मन्दिर के,
उचित नहीं है तुम्हें दुख से कराहना।
करना पड़े जो आत्मत्याग अनुरागवश,
तो तुम सहर्ष निज भाग्य को सराहना।
प्रीति का लगाना कुछ कठिन नहीं है सखे,
किन्तु है कठिन नित नेह का निबाहना।
चाहना जिसे है तुम्हें चाहिए सदैव उसे,
तन-मन-प्राण से प्रमोद- युत चाहना ॥

  

मुरली की तान

जिसे सुनने को दौड़ती थीं गोपिकायें सब,
निज शिशुओं को छोड़ दूध का कराना पान।
दूब चरना भी भूल गोकुल की गायें कुल,
नित्य सुनती थीं जिसे ध्यान से लगाके कान।

जिसको श्रवण कर नर, पशु, पक्षी सभी,
सुध बुध भूलते थे मन्त्र-मुग्ध के समान।
प्रार्थना यही है मुझको भी एक बार वही,
मुरली मनोहर सुना दो मुरली की तान॥

  

विचित्र मित्र

वाह! वाह! कैसे हमें सच्चे तुम मित्र मिले,
जलते सदैव हो हमारे अभ्युदय से।
तुम-सा हितैषी और कौन है हमारा भला,
होता तुम्हें हर्ष है हमारी पराजय से।
ऊपर से प्रेम तुम ऐसा दिखलाते हमें,
दङ्ग हम होते हैं तुम्हारे अभिनय से।
सच सच यार तुम यह तो बताओ हमें,
क्या तुम किसी को कभी चाहते हृदय से॥

(२)

आँख भी हमारी ओर तुम हो उठाते नहीं,
जब दुख देता हमें दुख दुखदाई है।
पर जब आप आपदा में फँस जाते तुम,
तब हो बताते हमें मेरा यह भाई है।
तुम हमें नीचा दिखलाना चाहते हो सदा,
वाह, यह कैसी धुन तुममें समाई है।
काट के हमारा सिर यार कहते हो हमें,
चलो भूल जाओ यह प्यार की लड़ाई है॥

  

प्रेम-प्रभाव

कैसे एक अनुपम सुख का तुझे विलोक,
होता मुझे अनुभव नित्य ही अपार है।
निठुर भले ही हो मुझे तो लगता है भला,
कौन कहता है बुरा तेरा व्यवहार है।
तेरे सामने मैं कभी रोना चाहता हूँ नहीं,
तो भी बह जाती लोचनों से जल-धार है।
जान पड़ता है नहीं किस भाँति तेरे लिए,
बन गया मेरा यह प्राण उपहार है॥

(२)

मेरा उर-देश भी न मेरे वश में है अब,
कैसे हुआ उस पर तेरा अधिकार है।
तुझको वहाँ से जो हटाना चाहता हूँ कभी,
होती दृग-वारि-धार और बे-करार है।
मेरे पास जो कुछ था वह सब तेरा हुआ,
लुट चुका लाखों बार मेरा घर-बार है।
कर दिया तूने सब भाँति बरबाद मुझे,
तो भी मुझसे तू करवाता सदा प्यार है॥

(३)

मुझको सताने में सदैव तुझे होता हर्ष,
मुझ पर तेरा इतना ही बस प्यार है।
यों हीं दुख दारुण तू नित्य मुझे देता रह,
कौन कहता है नहीं तुझे अधिकार है।

प्यारा मुझको है निज दुखमय जीवन ही,
क्योंकि यह तेरे प्रेम का ही उपहार है।
वह विकसाता सदा तेरे उर-वारिज को,
धन्य धन्य मेरी यह दृग-जल-धार है॥

  

निठुर से

कितना तुम्हें है अहो! मुझको सताना और,
मुझे सहना है तुम्हें जितना सहाना है।
मुझको किसी से कभी कुछ कहना है नहीं,
यों हीं चुपचाप दृग-नीर से नहाना है।
पर सब लोग जान जाते हैं तुम्हारा हाल,
काम कुछ आता नहीं कोई भी बहाना है।
खलता न नेक भी है दुख का उठाना मुझे,
खलता तुम्हारा बस निठुर कहाना है॥

अछूत

पत्थर हैं छूते और धूल को भी छूते आप,
फिर किस कारण से हमको न छूते हैं।
यह तो बताइए क्या आपमें विशेषता है,
आपके करों में क्या सुधा के बिन्दु चूते हैं।

आप ही कहें कि आप कैसे हैं विचारवान,
हमको न छूते किन्तु छूते नित्य जूते हैं।
हम तो सदैव मानते हैं अपने को पूत,
कैसे हैं अछूत हम पाप से अछूते हैं॥

(२)

आप करते हैं यहाँ कौन बड़ी करतूत,
आप क्यों सपूत और हम क्यों कपूत हैं।
कौन गुण आपमें है जो कि हममें है नहीं,
आप क्या हैं देव-दूत और हम भूत हैं।
किस बात में हैं भला हमसे अधिक आप,
क्या शरीर से ही अहो ! आप मज़बूत हैं।
एक जननी के क्या नहीं हैं हम दोनों पूत,
आप क्यों हैं पूत और हम क्यों अछूत हैं॥

  

निवेदन

दनुज-समान मैं महान पर-पीड़क हूँ,
बस कहने ही को मनुज-तनु-धारी हूँ।
न्याय से विमुख हूँ दया से दूर भागता हूँ,
चूर हूँ ग़रूर में कुटिल क्रूर भारी हूँ।
जानता हूँ मानता हूँ तुम्हें पहचानता हूँ,
तो भी हठ ठानता हूँ ऐसा अविचारी हूँ।
नेक ध्यान दीजिए न कीजिए निराश मुझे,
करुणानिधान ! करुणा का मैं भिखारी हूँ॥

(२)

बालपन बीता और साथ ही युवापन ने,
छीन लीं पुनीत भावनायें सब मन से।
जन्म हुआ मानस में मोह-मद-मत्सर का,
धर्म का छुड़ाया धुरा मैंने निज धन से।
किया उपकार मैंने नेक भी किसी का नहीं,
हुआ अपकार ही अपार मेरे तन से।
किस मुख से मैं नाथ याचना क्षमा की करूँ,
हुए अपराध हैं अनेक इस जन से॥

(३)

यही परिताप है कि मुझे यह सूझा नहीं,
पाप की लता है कभी फलती न फूलती।
निज निठुराई की विशाल प्रतिमा कराल,
नागिन-समान मेरे लोचनों में झूलती।
जिनको सताया उन्हीं दीन दुखियों की आह,
हरदम मेरे उर में है शूल हूलती।
मोह से मदान्ध हो तुम्हें जो नाथ! भूल गया,
मुझे वह भूल है भुलाये नहीं भूलती॥

  

बालक की कल्पना

भैया! हमें होता तब कितना अपार हर्ष,
होते हम बालक जो ब्रज के अहीर के।
जाकर विपिन में चराते धेनुओं को नित्य,
खाते मनमाने पकवान हम क्षीर के।

चढ़के कदम्ब पर मुरली बजाते मृदु,
मञ्जु दृश्य देखते कलिन्दजा के तीर के।
गाते और नाचते मचाते रस-रङ्ग ख़ूब,
साथ साथ खेलते सदैव बलवीर के ॥

  

सनकी

रहता न जाने कहाँ ध्यान उनका है सदा,
रहती कभी है उन्हें सुध भी न तन की।
प्रीति करना तो उन्हें गया सिखलाया नहीं,
होती न प्रतीति भी उन्हें है किसी जन की।
लाज लगती है मुझे यह कहते भी हाय,
कहने लगे हैं कुछ लोग उन्हें सनकी।
मेरी ओर भूल कर भी न कभी देखते हैं,
पूछो मत बात कुछ मेरे प्राणधन की॥

  

कलिका के प्रति

रीझ रहा तुझ पर लोलुप मिलिन्द आज,
क्या तुझे इसी से कलिका! है इतना हुलास।
यह सच मान उसका है प्रेम सच्चा नहीं,
वह तो सदैव बस रूप-रंग का है दास।

क्यों तू अपने को छलती है मत सोच यह,
तुझमें करेगा वह योंही सर्वदा निवास।
ज्यों ही घट जायगी बहार तेरी त्यों ही वह,
उड़ जायगा तुरन्त दूसरी कली के पास॥

  

चोरी

मुख ने चुराई प्रभा मञ्जुल मयङ्क की है,
छीनी अधरों ने अरुणाई है प्रवाल से।
आँख ने चुराई सुघराई नील नीरज की,
बाँह ने छुड़ाई पतलाई है मृणाल से।
कीर की लुनाई है चुराई मञ्जु नासिका ने,
मन्द गति छीन ली है चाल ने मराल से।
तेरे अङ्ग अङ्ग हैं चुराने में चतुर खूब,
कैसे वे बचे हैं दण्ड-संग्रह के जाल से॥

(२)

तेरे लोल लोचन चुराते चित्त-वित्त नित्य,
किन्तु वे उचित दण्ड नेक भी न पाते हैं।
चित्त जिनका वे छीनते हैं वे कदापि उसे,
वापस न पाते घोर दुख ही उठाते हैं।
उनसे किसी को कभी मिलता नहीं है न्याय,
न्यायाधीश न्याय-शील व्यर्थ ही कहाते हैं।
जो हैं अपराधी उन्हें कहता न कोई कुछ,
अपराध-हीन ही सताये सदा जाते हैं॥

  

दोषो

लाज ने तुम्हारी ओर देखने दिया न मुझे,
दोषो मुझे तुमने वृथा ही ठहराया है।
मैंने तन मन धन तुम पर वार दिया,
तो भी तुम्हें मेरा ध्यान नेक भी न आया है।
क्या कहूँ तुम्हारी दुखदायो निठुराई देख,
रहता सदैव मेरा चित्त घबराया है।
मेरे अनुराग को तो तुमने भुला है दिया,
किन्तु नहीं मेरो उस भूल को भुलाया है॥

  

व्याधा और पक्षी

झर झर झरने अनेक झरते थे जहाँ,
खग चरते थे वहीं विपिन विशाल में।
क्या कहें भला हम विरञ्चि की कठोरता को,
फँस गया एक दिन पक्षी दीर्घ जाल में।
कँप उठी भूमि और हिल उठे वृक्ष सभी,
रो उठे विहङ्ग बैठे पादप की डाल में।
चल दिया व्याधा उसे लेकर वहाँ से शीघ्र,
आई नेक भी न दया उसे उस काल में॥

  

दीन

एक लघु टूटी कुटिया ही है महल मेरा,
मन में न चैन है न तन में वसन है।
उड़ती विलोचनों में नित्य चिनगारियाँ हैं,
कानों में सदैव बस होता सन सन है।
जब कभी भूख-प्यास बहुत सताती मुझे,
नेत्र-नीर का ही तब होता आचमन है।
हीनता है प्यारी और दीनता दुलारी मुझे,
दुख दुखकारी दीन जीवन का धन है॥

(२)

हरदम लोग ठुकराते रहते हैं मुझे,
होता जगती-तल में मेरा यही मान है।
निज सुख में ही सभी मस्त रहते हैं सदा,
सुनता न कोई कभी मेरा दुख-गान. है।
कौन भगवान हैं मुझे क्या इसका है पता,
रहता सदैव पापी पेट का ही ध्यान है।
और कुछ बात दुनिया की जानता मैं नहीं,
भूख प्यास क्लेश का ही मुझे बस ज्ञान है॥

(३)

पेट का ख़ज़ाना रहता है सदा ख़ाली यहाँ,
मुझको मुहाल दुनिया में एक दाना है।
अच्छा था कि जन्म-काल में ही उड़ जाते प्राण,
उनके लिए ही क्लेश मुझको उठाना है।

देते सब लोग यह ताना मुझको कि मुझे,
सब कुछ पाना है न कुछ भी गमाना है।
दिन-रात दुख सहता हूँ क्या बताऊँ भला,
किसलिए मेरा यहाँ आना और जाना है॥

  

उपालम्भ

दीन-दुखियों का जो सदैव है सहारा,
अब क्या हुआ तुम्हारा वह प्यारा प्रेम-भाव है।
मर्म्म-वेदना से भरी दीन की उसास का क्या,
नेक भी न तुम पर पड़ता प्रभाव है।
क्यो न दुखियों का दुख दूर करते हो शीघ्र,
कब से दया का हुआ तुममें अभाव है।
बदल गया क्या नाथ ? सत्य ही तुम्हारा वह,
कोमल सरल शान्त सुखद स्वभाव है॥

(२)

दिन-रात घेरे रहती हैं दुख-चिन्ता हमें,
सोचो तुम्हीं क्या न हम सत्य हैं बखानते।
कब अवकाश हमको है तुम्हें जानने का,
तुम्हीं बतलाओ हम कैसे तुम्हें जानते।
नेक भी दया न कभी तुम हो दिखाते हमें,
किस भाँति दया-धाम तुम्हें हम मानते।
लेते सुधि तुम हम दीनों की कदापि नहीं,
कैसे दीन-बन्धु हम तुम्हें पहचानते॥

  

याचना

न्याय-दया-हीन जो हैं और जो अकारण ही,
कारण बने हैं हुए भूरि भूमि-भार के।
मन में सहानुभूति जिनके न नेक भी है,
जिनके हिये में भाव उठते न प्यार के।
क्रूर भरपूर जो हैं काले उरवाले बड़े,
रहते पड़े हैं जिन्हें लाले सुविचार के।
इतनी दया तो आप कीजिए दयानिधान,
दीजिए उन्हें न कभी पद अधिकार के॥

  

प्रबोधन

(१)

चिढ़ते न लोग तुम्हें देख यों कदापि आज,
घोलते सुधा जो तुम मीठे बोल बोलके।
भूल के भी तुम दुख देते दूसरों को नहीं,
यदि दुखियों के दिल देखते टटोलके।
रहते अजान तुम कभी इस भाँति नहीं,
चलते सदा जो निज आँख-कान खोलके।
माने नहीं जाते बिना मोल के मनुज तुम,
मोल जानते जो दया-प्रेम अनमोल के॥

(२)

यदि तुम दीनों को सताओगे सदा तो तुम,
पाओगे न चैन यह सोच लो विचारके।
एक दिन तुमको डुबावेंगे अचानक ही,
बहते पनारे दुखियों की अश्रु-धार के।
उनके विदीर्ण हृदयों की वेदना ही तुम्हें,
नागिन-समान डस लेगी फुफकारके।
मेरी ज्वाल-माल से ही ज़ालिम जलेंगे सब,
कहती यही है आह उनकी पुकारके॥

  

मयूर

आपही मिटेगा तप-ताप का कलाप यह,
भीष्म ग्रीष्म का तुरंत अंत अब आवेगा।
जितना ही अधिक तपेगा उतना ही शीघ्र,
चंडकर का प्रचंड तेज घट जावेगा।
छोड़ रही मेदिनी जो भाफ-रूपी दीर्घ श्वास,
वही घन बन नभ-मण्डल में छावेगा।
अब वह पावस का काल नेक दूर नहीं,
जब तू मयूर! भरपूर सुख पावेगा॥

  

प्राणधन

क्षण क्षण में अतीव होता है अधीर वह,
किस भाँति धीरज बँधाऊँ इस मन को ।
कैसे इन प्राणों को रिझाऊँ समझाऊँ भला,
रहते सदैव हैं ये व्याकुल मिलन को ।
चाहे उन्हें मेरी सुध आवे नेक भी न कभी,
किन्तु किस भाँति मैं भुलाऊँ प्राणधन को ।
सुमन भले ही भूल जाय भ्रमरावलि को,
पर भ्रमरावलि क्या भूलती सुमन को ॥

  

मुकुर

मुकुर ! न कोई तुझ-सा है भाग्यशाली और,
मिलता सदैव तुझे मान अति भारी है ।
सुमन-समान निज कोमल करों में नित्य,
लेती तुझे प्यार से सहर्ष सुकुमारी है ।
प्रतिदिन देखता है जी भर जिसे तू वह,
मञ्जु मनोहारी छवि किसने निहारी है ।
तेरे अङ्क में है वह शोभा अनायास आती,
प्यारी सुखकारी तीन लोक से जो न्यारी है ॥

(२)

दिखती तनिक इतराई इठलाई जैसी,
तेरे पास आने पर छवि मनभाई है ।
इस भाँति तुझसे सदैव मिल जाती वह,
लगती अभिन्न दिव्य गात की गोराई है ।

. शीघ्र ही बनाता तुझको भी दर्शनीय सदा,
उसका रुचिर प्रतिबिम्ब मोददायी है।
मुकुर ! बता तू क्यों न देख पड़ती है अब,
वह सुघराई कहाँ तुझमें समाई है॥

(३)

देखकर रम्य रत्न-जटित विभूषणों को,
आती बार बार सुध दिव्य तारा-गण की।
किसको नहीं है सब काल यह होता ज्ञात,
चारु चाँदनी-सी चारुता है मञ्जु तन की।
पूर्ण चन्द्रमा की उपजाती मन में है भ्रान्ति,
कमनीय कान्ति मृदु मञ्जुल वदन की।
मुकुर ! सभी दिन अनूप-रूप-राशि वह,
तुझको दिखाती छटा राका के गगन की॥

(४)

धन्यवाद दे तू उस मूर्तिमती मञ्जुता को,
मिलती सदैव तुझे जिससे बड़ाई है।
मुकुर ! न कर मन में तू अभिमान नेक,
उसकी छटा में तेरी छवि भी समाई है।
उसकी प्रभा में देख ले तू प्रतिबिम्ब निज,
तुझमें ज़रा भी कहाँ वैसी सुघराई है।
होता चूर तेरी चारु आभा का ग़रूर सारा,
जब वह देखती कपोल की लुनाई है॥

  

रूप-राशि

(१)

शरद्-जुन्हाई-सी है गात की गोराई चारु,
आनन अनूप मानो फुल्ल जलजात है।
किस भाँति कोई कभी यह बतलावे भला,
कब दिन होता और होती कब रात है?
उसमें मिली है प्रभा शशि और सूर्य की भी,
क्या नहीं स्वयं ही सिद्ध होती यह बात है?
किसने न देखी वह रूप-राशि बार बार,
तो भी अनदेखी वह होती सदा ज्ञात है॥

(२)

उसको विलोक लोक सुध-बुध खोता सदा,
होता उसे ऐसा मोद मन में महान है।
ज्यों ज्यों हम देखते हैं उसका अनूप रूप,
त्यों त्यों वह होता ज्ञात और रूपवान है।
जग में अनेक उपमान हैं प्रसिद्ध किन्तु,
कोई भी न छविमान उसके समान है।
होता चूर उसकी निराली चारु छवि देख,
लाखों अंशुमाली की प्रभाली का गुमान है॥

(३)

उसको निहार छवि ने भी हार मान ली है,
कमनीय कञ्ज-कलियाँ हैं कुम्हलाई-सी।
क्षण क्षण ज्योति क्षण-ज्योति की विलीन होती,
मानो उसे देख छिपती है शरमाई-सी।

आँखें सदा दौड़ दौड़ जाती हैं उसी के पास,
उसके सुरूप-सुधा-सिन्धु में समाई-सी ।
शरद-जुन्हाई मनभाई है अवश्य किन्तु,
पाई है लुनाई नहीं उसकी लुनाई-सी ॥

  

उन्मादिनी

ज्योंही हुआ निज प्राणपति का वियोग उसे,
त्योंही वह बावली-सी हुई पल भर में ।
दिन-रात खोजती उसी को फिरती है वह,
गाँव गाँव गली गली और घर घर में ।
प्राणधन प्राणनाथ कहके पुकारती है,
देख अपना ही प्रतिबिम्ब मञ्जु-सर में ।
मान कर छिपा हुआ उसे निज लोचनों में,
बार बार देखती है दर्पण ले कर में ॥

  

लोचन की मार

काम क्रोध लोभ कभी जिनको सताते नहीं,
जो हैं कर्म-वीर धीर धर्म्म-अवतार-से ।
विचलित नेक भी कदापि जो हैं होते नहीं,
जगत-जलधि की अपार तीव्र धार से ।

डरते ज़रा भी जो कराल काल से भी नहीं,
करते न नीचा सिर दुख-गिरि-भार से।
वे भी अपने को कभी सकते सँभाल नहीं,
प्यार से विलोकते विलोचन को मार से॥

(२)

गिर कर गिरि से भले ही बच जाय कोई,
चाहे बच जाय घोर वज्र के प्रहार से।
करके उपाय कोई चाहे बच जाय कोई,
परम अशान्त महासागर की धार से।
चाहे वक्र चालों से खलों की बच जाय कोई,
कूट नीतिवालों के कपट व्यवहार से।
किन्तु किसी भाँति कोई बचता कदापि नहीं,
प्रेम-रस-पूर्ण लोल लोचन की मार से॥

  

संसार

सुख से सदैव एक करता विलास जहाँ,
खोकर हुलास वहीं दूसरा उदास है।
छीनते सदा हैं लोग एक दूसरे का ग्रास,
एक का विकास दूसरे का सर्वनाश है।
जब तक ख़ून की नदी है बह जाती नहीं,
तब तक बुझती न जातियों की प्यास है।
कैसे मोह-पाश में फँसा है यह विश्व सारा,
सच्चे प्रेम का प्रकाश आता नहीं पास है॥

(२)

होता नहीं ज्ञात कितनी हैं विपदायें यहाँ,
छूटता कदापि नहीं जग दुख-जाल से।
जिसको गजेन्द्र भी सँभाल सकता है नहीं,
जाता ढुलवाया वह भार है मराल से।
कर रहे एक दूसरे की हानि सब लोग,
मर रहे एक दूसरे के करवाल से।
जगत-जनक ! तेरा परम अबोध शिशु,
जा रहा डसा है विकराल काल-व्याल से ॥

(३)

स्वार्थ-भावना ही रहती है मूल मित्रता की,
अपवादरूप सच्चा स्वार्थ-हीन प्यार है।
तन के लिए तो सुख-साधन अनेक बने,
किन्तु कभी जाता नहीं मन का विकार है।
शूरता बनी है क्रूरता का एक अन्य रूप,
होता बल-हीन पर घोर अनाचार है।
बाहर प्रकाश सब ओर दीखता है यहाँ,
छाया किन्तु भीतर अपार अन्धकार है ॥

  

तमाशा

होते हैं न लोभ क्षोभ मोह द्रोह आदि जिसे,
जिसको सताती नहीं भूख या पिपासा है।
वासना-विहीन लीन जो है सदुपासना में,
होता कभी जिसको न कोई अभिलाषा है।

जिसकी विचित्र शक्ति भक्ति में छिपी है सदा,
भव्य भावना से भिन्न जिसकी न भाषा है।
आशा वा निराशा जिसे होती है कदापि नहीं,
उस जग-जीवन को जग ही तमाशा है ॥

  

नागरी

महा मुददायिनी विधायिनी समुन्नति की,
कल कमला है उर-कमल-विलासिनी।
देश की दुलारी दुखहारी सुखकारी भारी,
चारु चन्द्रिका है कुल-कुमुद-विकासिनी।
जाति-प्रीति-भाजन सुहावनी सरस मञ्जु,
रवि की प्रभा है मोह-तिमिर-विनाशिनी।
देव-नागरी सी दिव्य नागरी उजागरी है,
आगरी गुणों की भव्य भारत-निवासिनी ॥

(२)

भारत-निवासियों की भव्यदृग-तारा-सी है,
ध्रुव धर्म्म में है ध्रव धीर ध्रुव तारा-सी।
विपदा-पयोनिधि में डूबते हुओं की तरी,
असहाय दीन दुखियों की है सहारा-सी।
पावन बनानेवाली पतित अपावन को,
पावन है सुर-सरिता की शुचि धारा-सी।
देश-हित-कामिनी है कामिनी ललाम वह,
रूप-गुण-शालिनी है दिव्यदेव दारा-सी ॥

  

विचित्र सम्बन्ध

हमको सदैव ठुकराते रहते हो तुम,
किन्तु हम नित्य तुम्हें शीश ही झुकाते हैं ।
यद्यपि कदापि तुम हमें अपनाते नहीं,
पर हम सर्वदा तुम्हारे कहलाते हैं ।
हरदम हमसे तने ही रहते हो तुम,
तो भी हम सतत तुम्हारा गुण गाते हैं ।
तुम हमें देख निज दृग फेर लेते सदा,
हम तुम्हें देख दृग-पाँवड़े बिछाते हैं ॥

(२)

होती तुमसे है अति हानि ही हमारी सदा,
पर हम लाभ तुम्हें नित्य पहुँचाते हैं ।
करते अतीव अपमान ही हमारा तुम,
तो भी हम मान तुम्हें सर्वदा दिखाते हैं ।
तन मन धन हम देते हैं तुम्हें सहर्ष,
पर बदले में बस घोर दुख पाते हैं ।
सींच कर लोचन के नीर से सदैव हम,
क्या नहीं तुम्हारी सुख-बेलि को बढ़ाते हैं ॥

  

मातृहीन

बार बार मैया मैया बालक पुकारता है,
चारों ओर खोजता है उसको सदन में ।
उसको उठाके निज गोद में पिता ने कहा,
वह तो गई है फूल लेने उपवन में ।

बालक ने पूछा मुझे छोड़ क्यों यहाँ है गई,
सुनके पिता को हुआ भारी शोक मन में ।
कण्ठ भर आया वह कुछ भी न बोल सका,
सिन्धु-सा उमड़ आया उसके नयन में ॥

  

मानस-दुकूल में

लता-द्रुम-बल्लियों में बार बार खोज चुका,
खोज चुका पल्लवों में और फूल फूल में ।
ग्राम ग्राम धाम धाम में मैं उसे खोज चुका,
खोज चुका गङ्गा-यमुना के मञ्जु कूल में ।
व्योम-तल भूतल रसातल में खोज चुका,
खोज चुका वन उपवन छवि-मूल में ।
किस भाँति निज चित्त-चोर को मैं पाता कहीं,
वह तो छिपा है मृदु मानस-दुकूल में ॥

  

प्रेमी

(१)

हूँ जिस भाँति यहाँ अब मैं,
उस भाँति सदा मुझको रहने दो ।
जो कुछ है कहना जिनको,
मत ध्यान धरो उनको कहने दो ।

सोच करो न वृथा मुझको,
इस प्रेम-पयोनिधि में बहने दो ।
हो यदि नाथ ! सुखी तुम तो,
सब काल मुझे दुखही सहने दो ॥

(२)

प्रेम किया जिसने उसको,
फिर क्या उसके फल से डरना है ।
व्याकुल प्राण तृषाकुल को,
अवलम्ब यही दृग का झरना है ।
जान लिया घट-जीवन का,
मुझको दुख के जल से भरना है ।
हो जिससे तुमको सुख नाथ !
सदैव वही मुझको करना है ॥

  

भ्रान्ति

मञ्जु युग मीन क्या महीप मीन-केतन के,
रम्य रूप-सर में समाये अभिराम हैं ।
यौवन के कानन में किंवा दो चपल चारु,
खेल रहे खञ्जन खिलाड़ी छवि-धाम हैं ।
अथवा खिले हैं दो सरोज सुधा-सागर में,
किंवा प्रेम-रस-पूर्ण प्याले युग श्याम हैं ।
या हैं दो मनोज्ञ मृग-शावक सुधाकर में,
किंवा लोचनाभिराम लोचन ललाम हैं ॥

(२)

एक लघु लहर ललाम सुधा-सागर की,
क्या बही मुकुर पर आज आसमान से।
किंवा चन्द्रमा में चारु चञ्चला समा है रही,
ऊबकर भारी वारिधर के वितान से।
किंवा खिले सुन्दर सरोज में है खेल रही,
आकर अनूप अंशुमाला अंशुमान से।
अथवा अमन्द सुखकन्द मुख-चन्द तेरा,
मण्डित है मञ्जु मन्द मन्द मुसकान से॥

  

वज्रपात

पावस की मञ्जु छटा घन की सघन घटा,
सब लोग देखते थे चारों ओर ध्यान से।
हरी-भरी भूमि पर खेलते थे बाल-वृन्द,
मन मोहते थे मन्द मन्द मुसकान से।
हर्ष से हिंडोले पर झूलती नवेलियाँ थीं,
जल-थल व्योम-तल गुञ्जित था गान से।
सब सुख-साज था किसे था यह ज्ञात भला,
आज ही गिरेगो गुरु गाज आसमान से॥

  

सपना

देख अचानक मोहन को,
 झट लोल विलोचन का झिप जाना।
मन्द हँसी उनकी लखके,
 तन का कँपना मन का शरमाना।
बोल नहीं सकना कुछ भी,
 निज आनन आँचल बीच छिपाना।
सम्भव है मुझको सजनी,
 अपना सपना किस भाँति भुलाना॥

  

क्या से क्या

पहले गुलाब की कपोलों ने उड़ाई हँसी,
 अब वह करता उन्हीं का उपहास है।
मुख को विलोक लगता है शशि फीका नहीं,
 शशि को निहार होता मुख ही उदास है।
चंचल दृगंचल वे हो गये अचंचल हैं,
 मानों उन्हें भूल गया रुचिर विलास है।
रह गई अङ्ग में अनङ्ग की तरङ्ग नहीं,
 भङ्ग रस-रङ्ग हुआ खो गया हुलास है॥

(२)

दृग-बाण उसके हुए हैं अब कुण्ठित-से,
 होगया शिथिल बङ्क भृकुटी-कमान है।
उसके मलिन मुख-पङ्कज का रूप-रस,
 लोचन-मधुप-वृन्द करता न पान है।

अपनी निराली छटा मोद-युत आरसी में,
बार बार देखने की छूट गई बान है।
मान ही नहीं है फिर मान वह कैसे करे,
जाता रहा हाय, छवि का ही अभिमान है ॥

(३)

जिसको विलोकके विलोचन अघाते नहीं,
वह अब लोचन को नेक भी न भाती है।
निज छवि से जो नित्य चित्त को चुराती रही,
वह अब लाज-वश आँख ही चुराती है।
जिसको निहार काम-कामिनी लजाती रही,
वह अपने को देख आपही लजाती है।
भामिनी को देख दामिनी थी छिप जाती अब,
दामिनी को देख भामिनी ही छिप जाती है ॥

  

भावी पिता

लेगी निज गोद में तू कैसे मुझे मैया तब,
भैया के समान जब मैं भी बढ़ जाऊँगा।
फिर यदि कोई मुझे बालक कहेगा कभी,
तो मैं उसे ख़ूब फटकार बतलाऊँगा।
होगा तुझे हर्ष बड़ा दूल्हा बन मैं भी जब,
ब्याह कर एक दुलहिन घर लाऊँगा।
होंगे पुत्र मेरे और घेरे वे रहेंगे मुझे,
फिर मैं पिता की भाँति पिता कहलाऊँगा ॥

  

मङ्गलामुखी

जलती समूल जिसमें है सुख-शान्ति-बेलि,
प्रबल अनल ऐसा उर में लगाती हैं ।
रौरव के तुल्य हैं बनाती नर-जीवन को,
कुल कुल-गौरव को धूल में मिलाती हैं ।
मन में कुभावना के भाव उपजातीं सदा,
चित्त को फँसातीं वर वित्त को नसाती हैं ।
मङ्गल में वे सदैव करती अमङ्गल हैं,
फिर क्यों भला वे मङ्गलामुखी कहाती हैं ॥

  

भेदोद्घाटन

कोई उनसे जो कभी मेरा हाल पूछता था,
तो वह सदैव बन जाते थे अजान-से ।
प्रेम-रस में थे सने तो भी थे तने ही सदा,
रहते बने थे उदासीन ही गुमान से ।
भूल कर भी न कभी मेरी ओर देखते थे,
सुनते नहीं थे नेक मेरी बात ध्यान से ।
वह सब भाँति निज भाव को छिपाते रहे,
किन्तु खुल गया भेद मन्द मुसकान से ॥

  

नारी-रूप-धारी नर

सुन्दर किनारीदार साड़ी पहनी है लाल,
की ललाम चूड़ियों से भूषित कलाई है।
जन-मन-रञ्जन को अञ्जन लगाके खूब,
रुचिर विलोचनों की सुषमा बढ़ाई है।
शान है गमाई निज आन है गमाई और,
सारी मरदानगी भी अपनी गमाई है।
रमणी बना है रमणीय बनने को नर,
क्या करे भला जो रमणीयता न आई है॥

(२)

विधु-सा वदन क्यों न उसको मिला है मञ्जु,
क्यों न मिला केसरी-सा क्षीण कटि-देश है।
उन्नत उरोज क्यों न उसको मिले हैं चारु,
क्यों न मिली चितवन चञ्चल विशेष है।
क्यों नहीं हुआ है वह दाढ़ी-मूछ से विहीन,
पाया क्यों न उसने सलोना वर वेश है।
विधि ने बनाया क्यों न नारी सुकुमारी उसे,
होता यह सोच कर उसे अति क्लेश है॥

  

ज्ञान

कौन कहता है नाथ तेरा पता है न कहीं,
रहता सदैव तू है सज्जन के मन में।
अन्धा वह नर है तुझे जो देखता है नहीं,
दुख-भरी दीन-दुखियों की चितवन में।

क्या नहीं अवश्य हम पाते तुझको हैं सदा,
आोज से गँभीर धीर वीर के वचन में।
करता निवास भारती के तू भवन में है,
न्याय दया प्रेम शील सत्य के सदन में ॥

  

हिन्दू

बीत गईं सदियाँ न सुधरी हमारी दशा,
नदियाँ दृगों से अभी और बहने को हैं।
जिनको न आता खड़े होना निज पैरों पर,
इस दुनिया में वे न और रहने को हैं।
दीन बल-हीन की न कुशल यहाँ है अब,
वे तो चुप-चाप घोर दुख सहने को हैं।
हिन्द और हिन्दी का जो हित करते हैं नहीं,
हिन्दू वे नहीं हैं हिन्दू बस कहने को हैं ॥

  

आँसू

वेदना-विरह की न उर में समा है सकी,
आ रही इसी से अब आँखों में उछलके।
या कि दुख-दलित कलेजे की रुधिर-धार,
बह रही रूप-रङ्ग अपना बदलके।

अचरज क्या है भला जो हैं ये गरम ख़ूब,
तप्त उर-देश से ये आते हैं निकलके।
टूट रहे तारे या अँगारे कहूँ प्यारे इन्हें,
हैं मुझे जलाते ये फुहारे दृग-जल के॥

  

माधुरी

मत कर चिन्ता नाथ! मेरे दुख-दर्द की तू,
उससे न नेक भी मैं कभी घबराता हूँ।
सच कहता हूँ डरता हूँ न विपत्तियों से,
उर की व्यथा को निज चित्त में न लाता हूँ।
जग की प्रवञ्चना से मैं हूँ ऊब जाता जब,
तेरी याद कर कर मन बहलाता हूँ।
तेरी माधुरी को देख मस्त रहता हूँ सदा,
तेरी सुधा पीकर कदापि न अघाता हूँ॥

  

सच्चे शूर

प्राण भी पड़े हों उनके जो घोर सङ्कट में,
तो भी दीनभाव से न शत्रु को निहारते।
टूक टूक चाहे हो शरीर पर युद्ध-बीच,
पीछे हटना वे धर्म खाना हैं विचारते।

ज्यों ज्यों बढ़ता है बल सबल विपक्षियों का,
त्यों त्यों सिंह-नाद कर और ललकारते।
एक बार ही क्या बार बार हार खाकर भी,
वीर रण-धीर कभी हिम्मत न हारते॥

  

शरमाना

मेरे भाव को क्या तुमने भी नहीं जाना अहो,
नित्य ही तुम्हारा यहाँ आना और जाना है।
कुछ भी उपाय हाय सूझता नहीं है मुझे,
बोलना न आता मुझे मैंने यह माना है।
कैसे करूँ हिम्मत मैं मुझको तुम्हारे ढिग,
सम्भव कभी न निज आँख भी उठाना है।
बस घुलना है मुझको सदैव चुपचाप,
कर रहा मुझे बरबाद शरमाना है॥

  

पिपासा

खुल गया भेद सब लोग यह जान गये,
अब तक प्राण अटके हैं किस आशा से।
वह भी निगोड़ी अब होती जा रही है भङ्ग—
अङ्ग में उमङ्ग रही जिस अभिलाषा से।

चिर काल से जो गूढ़ भाव मन में हैं छिपे,
होंगे नेक भी वे कभी प्रकट न भाषा से।
कैसा है तमाशा दिन-रात देखता हूँ तुम्हें,
तो भी मरता हूँ रूप-रस की पिपासा से॥

  

प्रेम का उपहार

कलक कलेजे की न नेक घटती है कभी,
चुभ रही नेजे के समान बार बार है।
बढ़ गई ऐसी एक-दम पीर मानस की,
काम कुछ आता नहीं कोई उपचार है।
भय है तुम्हारी सुध भी न कहीं बह जाय,
बह रही लोचनों से ऐसी जल-धार है।
प्यार तो तुम्हारा हमें सुलभ हुआ है नहीं,
पर मिला प्यार का तुम्हारे उपहार है॥

(२)

विविध प्रकार दुख देने में हमें सदैव,
क्या तुम्हें बताओ सुख मिलता अपार है।
बस तरसाते कलपाते रहते हो हमें,
हमसे तुम्हारा इतना हो सरोकार है।
मन में विचार कर तुम्हीं यह सोचो ज़रा,
कैसा प्रेम-पूरित तुम्हारा व्यवहार है।
क्यों न हो हमारी अश्रु-धार अति प्यारी हमें,
यह तो तुम्हारी प्रीति का ही उपहार है॥

गंगा-स्नान

मैंने आज देखा मित्र ! एक मनोहारी दृश्य,
गंगा में नहाती एक अनुपम बाला थी ।
मानो एक मञ्जुल मरालिनी थी मानस में,
मानो क्षीर-सागर में बाड़व की ज्वाला थी ।
मानो वह भी थी एक गंगा की लहर मञ्जु,
कर रही चारों ओर रूप का उजाला थी ।
उसको विलोक यह जान पड़ता था नहीं,
कोई देव-बाला थी कि कोई मणि-माला थी ॥

 

जुदाई

देखता हूँ तुझको धराधर में सागर में,
देखता हूँ मञ्जु सुमनों की सुघराई में ।
देखता हूँ तुझको सरोज में सरोवर में,
देखता हूँ लोल लतिकाओं की लुनाई में ।
देखता हूँ वन में भवन में गगन में भी,
देखता हूँ तुझको जुन्हाई मनभाई में ।
पहले तुझे मैं बस एक ठौर देखता था,
देखता हूँ सब ठौर तुझको जुदाई में ॥

  

तसवीर

कर चुकी नाना भाँति के अनेक उपचार,
होता नेक भी न शान्त मेरा उर-दाह है।
रुकता न मेरे दृग-जल का प्रवाह कभी,
घटती कदापि चल चित्त की न चाह है।
जिस ओर आते और जाते देखती हैं तुम्हें,
उस ओर से न कभी टलती निगाह है।
कितना विकल रहती हूँ मैं तुम्हारे बिना,
इसका तुम्हारी तसवीर ही गवाह है॥

(२)

करती निवास दिन-रात वह मेरे पास,
होने मैं न देती उसे अलग शरीर से।
रोती हूँ लगा कर उसी को उर से सदैव,
होती हूँ अधीर जब मानस की पीर से।
कोई भी न मेरी बात उससे छिपी है अब,
भीगी रहती है वह मेरे नेत्र-नीर से।
प्राण के दुलारे प्यारे प्राणधन मेरा हाल,
क्यों न पूछ लेते अपनी ही तसवीर से॥

  

नन्दलाल

बोलो श्याम! गोकुल की तङ्ग गलियों में घूम,
रङ्ग था जमाता कौन बालक अहीर का।
याद क्या नहीं है तुम्हें प्यारे ग्वाल-बाल-सङ्ग,
नित्य गेंद खेलना कलिन्दजा के तीर का।

किसके विरह में बताओ बनता था सिन्धु,
व्रज-वनिताओं के विलोचन के नीर का।
चाहे दधि-क्षीर का चुराना तुम्हें भूल जाय,
भूल सकता है क्या चुराना कभी चीर का॥

(२)

जाना भी तुम्हें था तो भुलाना था हमें न कभी,
क्या नहीं तुम्हें था फिर लौट कर आना भी।
तुमने सभी से यहाँ प्रीति थी बढ़ाई ख़ूब,
क्या नहीं तुम्हें था फिर उसको निभाना भी।
तुम हो निठुर सदा हमको खिझाते रहे,
सीख गये अब तुम हमें कलपाना भी।
तोड़ोगे कहो, क्या निज नाता व्रजवासियों से,
छोड़ोगे भला क्या नन्दलाल कहलाना भी॥

(३)

कैसे व्रजवासी भूल जायँ वे तुम्हारे मञ्जु,
मोर-पङ्ख लकुटी रुचिर वनमाल को।
मञ्जुल मराल का जो मान हरती थी सदा,
कैसे भूल जायँ वे तुम्हारी उस चाल को।
तुम्ही बतलाओ करें कौन वे उपाय हाय,
किस भाँति तोड़ें वे तुम्हारे प्रेम-जाल को।
व्रज को भले ही भूल जाओ व्रजचन्द तुम,
कैसे व्रज भूले निज प्यारे नन्दलाल को॥

दुखिया

छोड़ने न पाते मुझे मेरे दुख शोक कभी,
होने नहीं पाता कभी सबल शरीर है।
क्या करूँ उपाय हाय होने नहीं पाती दूर,
पल भर चिन्ता चल चित्त की गँभीर है।
सूखने न पाता कभी नीर है विलोचन का,
घटने न पाती कभी मानस की पीर है।
घिरने न पाती सुख-शान्ति की घटा है कभी,
फिरने न पाती कभी मेरी तक़दीर है॥

(२)

होता जो न जन्म कहीं मेरा जगतीतल में,
होते निराधार क्लेश जो यहाँ अपार हैं।
इस दुनिया में मुझे और है सहारा नहीं,
दुख-शोक हो सदैव मेरे बड़े यार हैं।
लाये कभी जाते उपयोग में न मेरे लिए,
न्याय, दया, प्रेम-भाव और सु-विचार हैं।
अविचार अत्याचार और अनाचार आदि,
देने को मुझी को दुख लेते अवतार हैं॥

(३)

मेरे भाल में कठोर विधि ने लिखा है नहीं,
इस दुनिया में सुख-सिन्धु-अवगाहना।
मुझको बदा न कभी शान्तिमय जीवन है,
उसको कदापि मुझे चाहिए न चाहना।
भङ्ग हो किसी की सुख-नींद जिससे न कभी,
उचित नहीं है मुझे ज़ोर से कराहना।
चाहूँ या न चाहूँ पर मुझे इस जीवन में,
दुख-शोक से ही नित्य नेह है निबाहना॥

(४)

मैंने सुख-शान्ति की न जानें कौन हानि की है,
मुझसे कदापि वह प्रीति है न जोड़ती ।
प्राण की जलन मुझे क्यों न अति प्यारी रहे,
वह निज नाता कभी मुझसे न तोड़ती ।
अतिथि बनी है वह मेरे मनोमन्दिर की,
वेदना कदापि मुँह मुझसे न मोड़ती ।
आती जो विपत्ति वह ऐसा रीझ जाती सदा,
भूल कर भी न कभी मुझे वह छोड़ती ॥

(५)

दीन बलहीन हूँ न कोई है सहारा मुझे,
तङ्ग रहता हूँ मैं विपत्तियों की मार से ।
मन में जलन रहती है बनी दिन-रात,
होती जो न शान्त कभी किसी उपचार से ।
प्राणों को जलाता है सदैव दुख-दावानल,
गुञ्जित है उर-देश उनकी पुकार से ।
जल गया होता मैं कभी का करुणावतार,
रहता न भीगा जो तुम्हारी अश्रु-धार से ॥

  

प्रार्थना

दीन बलहीन हैं सदैव ही सताये जाते,
क्या कहें जगत के निठुर व्यवहार को ।
तो भी चुपचाप वे न जानें किस प्रेम-वश,
उर से लगाये रहते हैं दुख-भार को ।

रहने न पाते वे कदापि सुख-शान्ति से हैं,
कहने न पाते निज मन के विचार को ।
करुणावतार ! कब रोकिएगा पापाचार,
अविचार अत्याचार और अनाचार को ॥

(२)

मानस से माया की मरीचिका मिटाके महा,
मोह-मद-मत्सर का माथ फोड़ दीजिए ।
नीति से अनीति का कराइए घमंड चूर,
प्रीति का सभी में नया नाता जोड़ दीजिए ।
करिए अनाथ को सनाथ शीघ्र दीनानाथ,
दीन दुखियों का दुख-जाल तोड़ दीजिए ।
कीजिए दया तुरंत लीजिए उबार उन्हें,
अथवा दयानिधि कहाना छोड़ दीजिए ॥

  

सलज्जा

चौंक उठी कल मैं सजनी,
इस भाँति अचानक मोहन आये ।
देख सके उनको न विलोचन,
थे तब वे इतने शरमाये ।
लाज-निशा-वश बोल-मिलिन्द,
नहीं मुख-पङ्कज से कढ़ पाये ।
मूर्ति-समान खड़ी बस थी,
उनके ढिग मैं निज शीश झुकाये ॥

दुख

लाख समझाओ पर मानता नहीं जो कभी,
ऐसे मूढ़ मन को न मुझे समझाना है ।
जल रहे प्राण जलने दो दिन-रात उन्हें,
आग अनुराग की न मुझको बुझाना है ।
आना है जिन्हें वे विपदायें क्यों न आतीं शीघ्र,
उनसे ज़रा भी नहीं मुझे घबराना है ।
दुख इतना ही मुझको है उन्हें देखे बिना,
चुपचाप एक दिन मुझे मर जाना है ॥

  

वियोगिनी

श्याम के ललाम श्याम रङ्ग में रँगे हैं खब,
क्या न श्यामता का हुआ और भी उभार है ।
दामिनी-समान है वियोगानल दीप्तिमान,
बहती सदैव आँसुओं को जल-धार है ।
इन्द्र-चाप की भी कमी देखिए नहीं है वहाँ,
श्वेत श्याम नील लाल रङ्ग की बहार है ।
वारिद बने हैं वर लोचन वियोगिनी के,
आता यही बार बार मन में विचार है ॥

वियोग में

ज्योंही भव्य भोले शिशु-रूप में मैं आया यहाँ,
त्योंही फँसा पाया अपने को प्रेम-रोग में।
मुझको नहीं है अवकाश कुछ सोचने का,
रत रहता हूँ एक ऐसे बड़े योग में।
तन दिया मन दिया पर जान पाया नहीं,
लाया गया मेरा दान किस उपयोग में।
उस दिन की मैं दिन-रात देखता हूँ राह,
जिस दिन मुझे मर जाना है वियोग में॥

(२)

है जिन्हें सभी सुख उन्हें भी रहती न शान्ति,
चाह है किसी के देखने की सब लोग में।
कौन कहता है यहाँ सच्चा अनुराग नहीं,
सत्यता न नेक भी है इस अभियोग में।
सोच लो जगत में अवश्य है किसी का अंश,
होती न इसी से कभी तृप्ति भव-भोग में।
इस दुनिया में दुख-रोग की कमी है नहीं,
योग ही किसी का है जिला रहा वियोग में॥

  

पहचान

जीभ नहीं कहती कुछ भी,
वह तो तुमसे भय मान गई है।
आँख नहीं तुमसे डरती,
मन की सब बात बखान गई है।

क्यों उसको तुम हो छलते,
अब बुद्धि सभी कुछ जान गई है।
क्यों इतना बनते तुम हो,
दुनिया तुमको पहचान गई है॥

  

प्रेम-लता

रहती तुम्हारी मूर्ति मन में समाई सदा,
रहती तुम्हारी छवि लोचनों में छाई है।
मैं हूँ धन्य मुझको बड़ाई इतनी जो मिली,
खलती न नेक भी तुम्हारी निठुराई है।
सींच कर अपने विलोचन के वारि से ही,
मैंने यह प्रेम-लता सुख से बढ़ाई है।
तोड़ सकता है कौन इस लतिका को कभी,
यह तो तुम्हारे नाथ! हाथ की लगाई है॥

  

आगमन

लाल श्वेत पीले और नीले वस्त्र धार कर,
घर से निकल आये फूल कहाँ जाने को।
पहने रुचिर परिधान नव पल्लवों का,
पादप खड़े हैं किसे आदर दिखाने को।

क्यों हैं बनी-ठनी लोल ललित लतायें सभी,
कोयल है कूक रही किसको रिझाने को।
कौन आ रहा है मुझको भी बतला दो ज़रा,
वायु क्यों लुटाता है सुगन्धि के ख़ज़ाने को॥

  

अभिलाष

कुछ भी बनूँ मैं मुझे होगा हर्ष ही अपार,
पाऊँ रहने जो सब काल तेरे पास मैं।
चाहता हूँ हरदम बनके चकोर एक,
देखा करूँ तेरे मुख-चन्द्र का प्रकाश मैं।
फूल बन तेरे उपवन में खिलूँ मैं नित्य,
और करूँ तेरे केश-कुञ्ज में विलास मैं।
सुख से सदैव करूँ तेरे उर में निवास,
बन कर तेरा एक लघु अभिलाष मैं॥

  

ईश्वर का घर

न्याय दया प्रेम सत्य को ही अपनाओ तुम,
यदि तुम्हें जग में कहाना दिव्य नर है।
सबकी भलाई करो सुयश कमाओ ख़ूब,
मर कर भी जो तुम्हें बनना अमर है।

मत करवाओ कभी उससे कठोर काम,
सोचो ज़रा कितना तुम्हारा मृदु कर है।
आने दो न उर में कदापि मद-मत्सर को,
क्या न जानते हो वह ईश्वर का घर है।

  

मनोज्वाला

झेल मैं चुका हूँ सभी जग की विपत्तियों को,
और कौन आपदा है मुझ पर आने को।
जान पड़ता है नहीं क्यों मैं अब जीवित हूँ,
रह गया कौन दुख मुझको उठाने को।
लुट चुका मेरा सब कुछ पहले ही हाय,
क्या है बचा मेरे पास और लुट जाने को।
मेरी मनोज्वाला मुझको तो है जला ही चुकी,
अब जलती है वह किसको जलाने को॥

  

चाह

जितने मनोरथ थे उनको बहा है दिया,
कितना प्रबल दृग-जल का प्रवाह है।
इतने दिनों के बाद मुझे यह ज्ञात हुआ,
रहता दृगों में छिपा सागर अथाह है।

छटपट प्राण हैं मचाते रहते सदैव,
बढ़ गया ऐसा यह मेरा उर-दाह है।
इस दुख में जो मुझे अब भी जिला है रही,
वह तुझे एक बार देखने की चाह है॥

  

चित्त-चोर

हहर उठा क्यों तरु-पुञ्ज यों अचानक है,
किसलिए घहर उठा यों घनघोर है।
कँप उठे हर्ष से विभोर हो क्यों शैल सभी,
मँच गया सागर में क्यों बड़ा हिलोर है।
बोल उठे पादप के कोटरों में क्यों विहङ्ग,
मोद-मद-मत्त हो क्यों नाच उठा मोर है।
मैंने देख पाया नहीं आया किस ओर से था,
और किस ओर गया मेरा चित्त-चोर है॥

  

अवसान

रटता रहा जो नित्य नाम प्राणवल्लभ का,
होगया अचानक है मौन वह कण्ठ-कीर।
तीर पर तीर लगते हैं दिन-रात किन्तु,
हिलता नहीं है अहो! नेक भी कभी शरीर।

रुक गई आपसे ही आप आँसुओं की धार,
चुक गया सारा इन लोल लोचनों का नीर ।
सुख-दुख एक-सा हुआ है अब मेरे लिए,
बढ़ गई ऐसी मृदु मन की गँभीर पीर ॥

  

गोपाल

कब से तुम्हारी राह दिन-रात देखता हूँ,
दयाधन ! दया कर दया दिखलाओ तुम ।
यह तो बताओ तुम छिपे किस लोक में हो,
आओ शीघ्र मुझे मत और तरसाओ तुम ।
राधा के सहित करो मेरे उर में निवास,
और सब मेरी भव-बाधा को मिटाओ तुम ।
जाऊँ मैं कहाँ गोपाल शरण तुम्हारी छोड़,
नाम के ही नाते अब मुझे अपनाओ तुम ॥

  

